भक्त गणपतराव दत्तात्रेय सहस्रबुद्धे (दासगणु महाराज)
द्वारा रचित

श्री साँई गुरुचरित्र

विनम्र हिंदी अनुवाद

साँईदास ध्रुव त्रिवेदी

2016

शिरडी

श्री गुरु चरणों में अर्पित

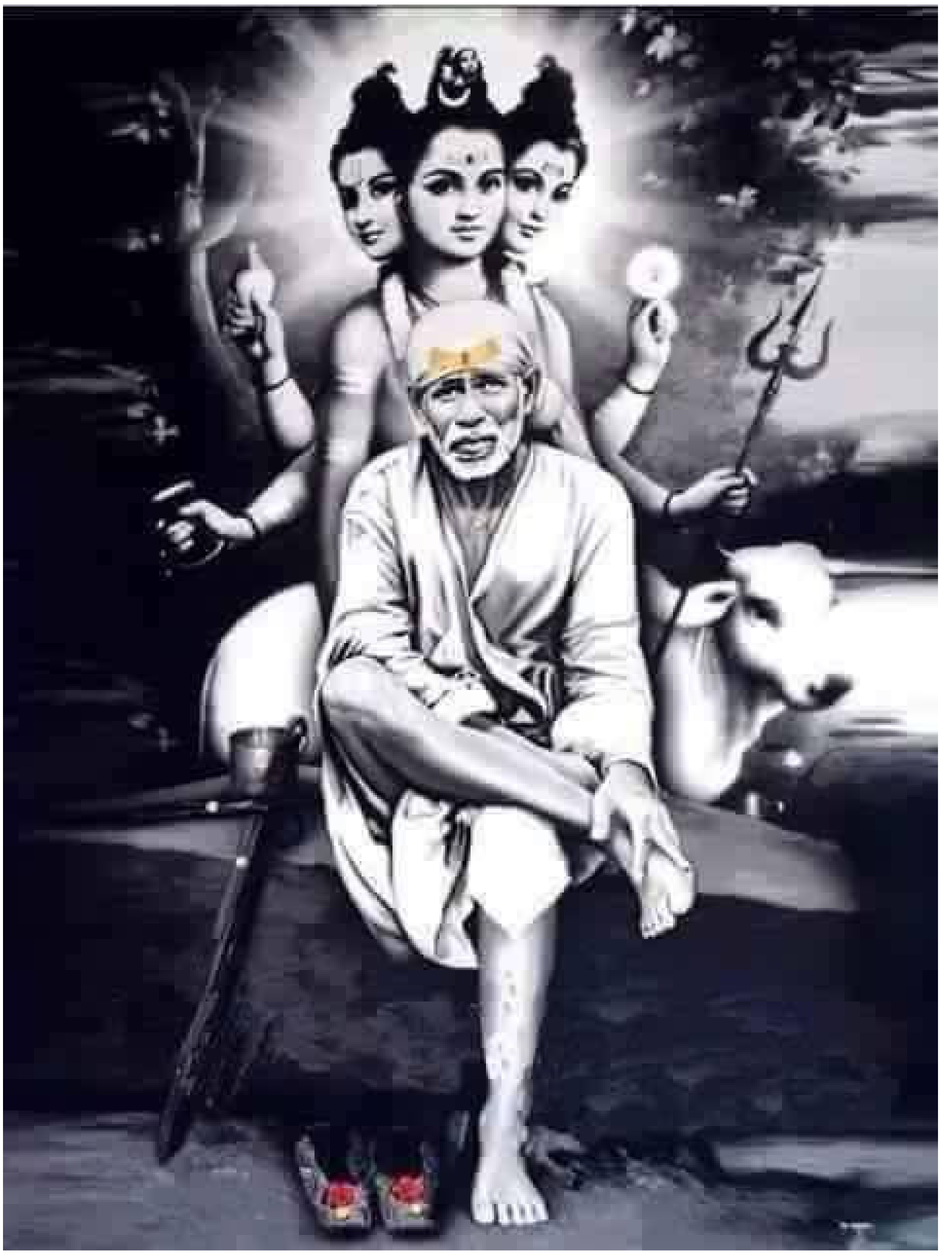

गुरु गोविंद दोनों खडे काके लागु पाय ?
बलिहारी गुरुदेवकी गोविंद दियो मिलाय ॥

विषय सूची

[पृष्ठ संख्या के साथ]

प्रस्तावना ५

अध्याय एक ६

परिचय ६
शिरडी के साँई बाबा ७
हमारा तेल का भंडार खाली हो चुका है ८
बाबा का तख़्ते पर शयन ११
पहले भोजन करो फिर जाओ १२
एक मुक़दमा अप्पा के लिये १४
बाबा को पैंसे के विचार मालूम हैं १७
अप्पा के मृत्यु की भविष्यवाणी १९
मारवाड़ी के सूखे घास का टाल २२
एक निमित्त मात्र विलंब न करते हुए तुरंत वापस लौट जाओ २५
हरि पंत निस्संतान है २६

अद्ध्याय दो ३०

जागृति की प्राप्ति कैसे की जा सकती है ३०
टिप्पणियाँ और उद्धरण ४०
कर्म के विषय में - आगे का क्रम ४१

अद्ध्याय तीन ५०

जिसका अध्ययन किया है उसका अनुसरण करो ५०

अद्ध्याय चार ५४

परिचय ५४
ईश्वर का बोध कैसे हो - नाना चाँदोरकर को ५५

अध्याय पाँच ६६

वेंकुशा का जीवन ६७
गोपालराव अपनी पवित्रता की रक्षा करते हैं ७०
तीर्थ यात्रा और बाबा के आगमन की घोषणा ७५
बाबा का वेंकुशा के पास आना ८०
दूसरों की ईर्ष्या ८२
टिप्पणियाँ और उद्धरण ८८

अध्याय छ: ९१

परिचय ९१
चंदुभाई पटेल का घोड़ा ९२
शिरडी में आगमन ९६
निरासक्ति (आसक्ति विहीन) ९८
नीम का वृक्ष ९९
गंगागीर १०२
बाबा के लिये एक नारियल १०६

अध्याय सात १११

गुरुस्थान ११२
दीक्षित को पांडुरंग दिखते हैं ११५
मेघा ११७
वह ईंट ११८
रतनजी और गुटों व जातियों में प्रभेद १२०
साँई बाबा की लीलाएँ १२९
दास गणु अहंकार को त्याग करते हैं १३३

साँई कृपा पर आधारित अनुवाद

प्रस्तावना

सर्व प्रथम इस साँईदास का श्री सद्‌गुरु साँईनाथ महाराज के चरण कमलों में सहस्र साष्टांग प्रणाम!

दास गणु महाराज द्‌वारा रचित इस महाकाव्य की मूल मराठी रचना तो नहीं, पर श्री एस व्ही एल द्‌वारा मूल तेलुगु अनुवाद (१९४९ से पूर्व) से आंग्ल भाषा में अनुवादित इस रचना को पढ़ने का सुअवसर मेरे साँई ने उपलब्ध कराया और इस निम्नस्तरीय भक्त की विनम्र याचना सुनकर उस रचना का हिंदी अनुवाद के लिये प्रेरित किया। कैसे हुआ? क्यों हुआ? और कब हुआ? इन सब प्रश्नों का उत्तर मेरे पास नहीं है। साँई ही जाने कि उनको किस रूप में किस से क्या सेवा चाहिये! हिंदी भाषी सभी गन्य मान्य पाठकों को सविनय निवेदित यह अनुवाद किसी न किसी तरह साँई इच्छा से, उपयोगी रहेगा, यही इस सेवक की कामना है।

हे साँई! काम, क्रोध, लोभ एवम अहंकार से कब होगा मुक्त यह दीन दास तुम्हारा? प्रति क्षण माया की क्रियाएँ भ्रमित कर प्रलोभन में फंसा कर ऐसे पटक पटक कर तुमसे और तुम्हारी कृपा से दूर भगा देती हैं, जिस से पश्चाताप की आंतरिक पीड़ा उत्पन्न होती है। परंतु तुम्हारी कृपा यदि हो, हे बलशाली साँई, क्या ऐसा होना सम्भव है? तुम्हारे समक्ष हे साँई यह हृदय के आंतरिक सतह से प्रार्थना और याचना है कि इन प्रलोभनों से उद्‌धार करो!

श्री दासगणु महाराज की यह रचना सत्य में एक ऐसा महाकाव्य है जिसको पढ़ने के पश्चात हर व्यक्ति के अंतर्मुखि होने की प्रवृत्ति उजागर हो जाती है। आशा है कि साँई दया से, इस कार्य में, एक क्षुद्र अनुदान के रूप में इस अनुवाद को स्वीकारा जायेगा।

ॐ साँई नमो नम:
श्री साँई नमो नम:
जय जय साँई नमो नम:
सद्गुरु साँई नमो नम: ॥

अद्ध्याय एक

परिचय

जय श्री गणेश! जय सर्वोपरी शिव भगवान की, जो पंचमुखी ईश्वर हैं। शूरवीरता की अग्नी की जय हो, जो कि केवल शिव हैं! आप जगत के माता एवम पिता दोनों हैं, आप से प्रार्थना है कि आप मुझे, यानी अपने संतान की अवहेलना न करें। कैलाश पर्वत जहाँ आपका निवास है सबसे मनोरम स्थान है। सर्वोत्तम श्री महाविष्णु भी आप ही का ध्यान संध्याकाल में करते हैं। हे सभी जीवों के स्वामी, प्राचीन काल में जब दक्ष प्रजापती ने आपका अपमान किया, तब क्रोधित होकर आपने वीरभध्र के रूप में अवतार लिया। हे पार्वती के पतिदेव, आपके भक्तों का उद्धार करना आपका ध्येय है। फ़िर मुझे क्यों अनदेखा कर रहे हैं आप? हे करुणा के पर्वत मेरी प्रार्थना क्यों नहीं सुनते? हे महाशक्तियुक्त त्रिशूल को धारण करने वाले, यह हो सकता है कि मुझे पापी तथा अज्ञान में डूबा हुआ जान, आप मुझपर अपनी कृपा नहीं बरसा रहे हैं। हे उमा के स्वामी आपने ही इस बालक को पशुवत प्रवृत्तियों के साथ जन्म दिया है। मैं अवश्य ही एक तुच्छ जीव हूँ। कृपया मेरी अवहेलना न करें। यह कहा जाता है कि ईश्वर के भक्तों को मृत्यु के पश्चात आप में विश्राम कर अनंत आनंद की प्राप्ति होती है। चाहे वे द्विज रूपी ब्राह्मण हो या फिर मासाहारी चान्डाल, सभी मृत्यु पश्चात महाविष्णु समान आप में विलीन हो जाते हैं। इस विषय में कोई भी संदेह नहीं। जैसे एक ही जीवन ऊर्जा सभी जीवों के हृदय में प्रज्वलित है ठीक उसी तरह ईश्वर के संतान भी एक समान हैं। केवल यहि सत्य है कि सर्वश्रेष्ठ परमात्मा विश्वब्रम्हाण्ड के पालक हैं। जाति एवम धर्म के आधार पर मनुष्यों में भेद भाव न करने वालों के मन में

द्वैत की आशंका कैसे हो सकती है? मेरी आपसे प्रार्थना है हे प्रभु, कि ऐसे ज्ञानी लोगों की आप रक्षा करें और उन्हें संजोयें। प्राचीन काल में संत कबीर और उनके पुत्र कमल दास महान भक्त हुए हैं। क्या सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ने उनके साथ कभी भेद भाव किया, केवल इस लिये कि वे भिन्न सम्प्रदाय के थे? अनिष्टार्थी नक्षत्र होते हुए भी जो ईश्वर के प्रति निष्ठावान हैं उन्हें श्री पाण्डुरंग सदा यह निश्चित करते हैं कि उनपर कोई आपदा न आये। चाहे कोई उच्य जाति का हो या फिर नीच जाति का, अथवा वह अर्थिक रूप से सम्पन्न हो या दरिद्र, यदि वह एकाग्रता से ईश्वर की भक्ति करता हो और अटल शिला जैसे उनके प्रति निष्ठा रखता हो, वह ही सर्वश्रेष्ठ स्वामी श्री हरी के प्रिय है।

शिर्डी के साँई बाबा

गोदावरी के दक्षिण में, कोपरगाओ□से लग भग ८ मील दूर, शिर्डी का विनम्र छोटा सा गाँव स्थित है। इस जगत के सर्वगुणों का निवास। इस गाँव में कभी साँई बाबा रहा करते थे। लोग उन्हें "साँई" या फिर "बाबा" बुलाते थे। वे सर्वदा सत्चितानन्द में डूबे हुए रहते थे (हैं)*। कोई भी उनकी पूर्व की गाथा या इतिहास से अवगत नही□था। मैं इसका विवरण कैसे कर सकता हूँ जब मैं स्वय□दूसरों की तरह अज्ञानी हूँ? यदि बाबा से यह प्रश्न पूछा जाता तो उनका उत्तर होता, "जैसे मेघों के गर्जन की ध्वनि के पश्चात वर्षा होती है, ठीक उसी तरह मैं भी इस धरती पर गिरा हूँ। मेरा न तो नाम है और न ही स्थान। मैं निर्गुण हूँ। इस शरीर का धारण कर्मफल स्वरूप हुआ है, जो अपने कर्म को अटल और अपरिवर्तनीय रूप से करेगा। मैं सर्वत्र शरीर के माध्यम से परिचित हूँ। सारा विश्व मेरा निवास है। ब्रह्म मेरे पिता - और अभेद्य माया मेरी माँ है। उन्ही□के मिलन से मैंने

यह शरीर धारण किया है, जिसे आप अपने चक्षुओं से देख पाते हो।" वे सर्वदा इस जगत के अस्तित्व को अस्थायी मानते थे। उसी साँई महाराज ने शिरडी में अपनी महिमा के अनगिनत उदाहरण प्रेषित किया है। अज्ञान में डूबा हुआ यह दास गणु कैसे इन लीलाओं का व्याख्यान कर सकता है?

हमारा तेल का भंडार खाली हो चुका है

शिरडी एक विनम्र और दरिद्र ग्राम था। गाँव में बहुत ही कम दुकानें थीं। जो थीं, वे केवल किराने की दुकानें थीं। साँई बाबा हर रोज़ मस्जिद में दीयों को प्रज्वलित करने के लिये इन दुकानदारों से तेल की भीक्षा मांगा करते थे। इसि तरह वे मंदिरों में भी दीये जलाते थे। वे इन धार्मिक स्थलों पर दीयों को प्रज्वलित करने का पर्व मनाते थे। दुकानदार उनके रोज़ तेल की भीक्षा मांगने पर चिड़ चुके थे। एक दिन उन्होंने इकट्ठे होकर इस विषय पर चर्चा की। "इस व्यक्ति को हर रोज़ कहाँ से हम मुफ़्त तेल देते रहेंगे?" उन्होंने निश्चय किया, अब और तेल नहीं देंगे। जब बाबा तेल की भीक्षा मांगने गये तो हर जगह से उनको एक ही उत्तर मिला। "तेल का भंडार खतम हो चुका है, अब और तेल नहीं बचा है।" बाबा चकित हुए। वे बोले "इतनी छोटी सी चीज़ के लिये झूट बोलने की क्या आवश्यकता है?" और मस्जिद वापस चले गये।

असत्य और प्रपंच के कारण ही आज लोग दुख के महासागर में डूब रहे हैं और ईश्वर से दूर हो रहे हैं। अपनी ही रचित कर्म के जाल में फंस रहे हैं और उचित मार्ग से भटक रहे हैं। सबसे विकट पाप असत्य है। जो मित्थ्या को अपनाते हैं उनपर प्रभु की कृपा कभी नहीं होती है। जो सर्वदा सच और सच्चाई का साथ देते हैं उनके वे दास बने रहते हैं। जप और

तप की साधना, सत्य और सत्यता की साधना के समक्ष, तुच्छ है। सत्यता हर धर्म का आधार है। सत्यता मोक्ष प्राप्ति का सबसे सरल उपाय है। सत्य ही सनातन परमानंद है। सत्य को कभी भूलना नहीं और हमेशा उसीके साथ रहना।

इस तरह श्री साँईनाथ व्यापारियों से बिना कुछ कहे ही वपिस आ गये, जिनके बारे में वे जानते थे कि वे झूट बोल रहे थे। उसके पश्चात उन्होंने एक विस्मयजनक घटना की रचना की। उन्होंने मस्जिद के चहूँ ओर मिट्टी के दिये रखे और उनमें बाती भी लगाया। सभी ग्राम वासी इस घटना के बारे में जान चुके थे और कौतुहलवश मस्जिद में एकत्रित हो गये। वे लोग आपस में बातें करते रहे। "दीये, बिना तेल के, कैसे जलेंगे? यह साँई काफ़ी पागल दिखता है। क्या मरा हुआ बीज कभी प्रस्फुटित होता है? क्या कभी किसी बांझ ने संतान को जन्म देते हुए परिवार की खुशी बढ़ाई है?"

"क्या जो ज्ञानी हैं वे इनपर कभी विश्वास करेंगे? यह पागल आदमी दीयों को, बगैर तेल के प्रज्वलित करने की कोशिश कर रहा है। यह अवश्य ही पागलों का राजा और उन्मादों का महाराजा है।" गाँव वाले बाबा को इस तरह कोसते रहे। बाबा ने उस टीन को उठाया जिसके निचले हिस्से में थोड़ा सा तेल बचा हुआ था और मस्जिद में वापिस चले गये। नाना सहेब देंगले ने लोगों को बाबा का उपहास करते हुए और उनकी बेइज़्ज़ती करते हुए देखा। वे बोल पड़े, "तुम लोग अंधे हो। अपनी अज्ञानतावश उन्हें इस तरह लांछित मत करो और न ही उनका परिहास करो। केवल ईश्वर ही इनकी क्षमता जानते हैं। हम ग़लती से उस मणि का परित्याग तो नहीं कर रहे जो साधारण पत्थरों के बीच में गिर गया हो? शीघ्रता में अनुचित

निर्णय नहीं लेना चाहिये। कुछ देर ठहर कर यह देखें कि यह फ़कीर क्या कर रहा है। हमें जलदी क्या है उनकी इस तरह निंदा करने की?”

सब मस्जिद में चुप चाप बैठे थे। बाबा के पास टीन में केवल एक दीया जलाने के लिये पर्याप्त तेल था। बाबा ने उसमें, तेल की आधी मात्रा में जल, टीन में डाला और फ़िर आँखें मूँद कर ध्यान मग्न हो गये। उन्होंने थोड़ा सा तेल और पानी का मिश्रण अपने मुँह में लिया और गरारे करने के पश्चात वापिस उस टीन में थूक दिया। उन्होंने उस मिश्रण को सभी दीयों में डाला। आश्चर्य, अब सभी दीयों में तेल पर्याप्त था। उन्होंने उन दीयों को प्रज्वलित किया और वे रात्री भर चम चमाते हुए जलते रहे। डेंगले बाबा की इस अलौकिक शक्ति को देख चकित रह गये। उन्होंने श्रद्धापूर्वक उनके चरण स्पर्श किये। बाबा के इस अद्भुत चमत्कार से लोग विस्मित हो गये। वे बोले, "कितना आश्चर्यजनक है बाबा की यह लीला! वे और कोई नहीं, स्वयं भगवान हैं!" उन्होंने बाबा के समक्ष घुटने टेक दिये। "बाबा, हमने आपका उपहास करके बहुत बड़ा पाप किया है। हम सब आपकी संतान हैं। आप ही सच में हमारी माँ हैं। कृपया हमसे नाराज़ न हों। साँई महाराज, हे कृपा के गिरिवर, हमारी ग़लतियों को क्षमा कर दें। आप तो दया के सागर हैं; आप सच्चे ज्ञान के सूरज की तरह दीप्तिमान हैं। आप वह विशाल सागर हैं जिसमें शुद्ध गुण भरे हुए हैं। आप ही शांति के पर्वत हैं।"

वे सभी बाबा से प्रार्थना करने लगे कि वे उनसे क्षुब्द न हों और उनका बचाव करें। बाबा ऐसे बोले, "मेरे शब्दों को ध्यान से सुनो। ऐ जनगण। सर्वदा ऐसे आचरण करो जो कि सर्वशक्तिमान को प्रिय हो। कभी झूट नहीं बोलना। यदि आप सत्य के साथ रहोगे, तो ईश्वर आपके साथ रहेंगे। कोई ऐसा कार्य न करो जिससे दूसरे को कष्ट पहुँचे। जितना आपसे हो

सके, दरिद्र को उतना देते रहो। आपको इस से पुण्य मिलेगा और आप के साथ अच्छा होगा। आपके इस आचरण से ईश्वर खुश होंगे और अंत में आपको उनका दिव्य दर्शन देंगे। यह सत्य है। मेरे इन वचनों को हृदय से लगाओ और उनका सदा पालन करो।" शिरडी के लोगों ने श्री साँई बाबा के इन वचनों को सहर्ष सुना और अपने अपने घर तृप्त होकर लौट गये।

बाबा का तख़ते पर शयन

श्री साँई बाबा एक महान योगी हैं। उनके दिव्य शक्तियों का वर्णन करना मेरे जैसे मूढ़मति के बस का नहीं। बाबा की दिव्य शक्तियों को देख प्रभावित और तीव्र भावुक भक्ति के कारण थर थराते हुए स्वर में डेंगले ने बाबा की लीलाओं का यूँ व्याख्यान किया, "बाबा का बिस्तर साधारण कलपना से परे है। वह एक लकड़ी का तख़ता है जो कि केवल एक हाथ चौड़ा और चार हाथ लंबा है। फटी गुदड़ियों से वे उसको मस्जिद के छत के बीमों से बांधते हैं। मस्जिद ही जीर्ण अवस्था में है और दीवालों से प्लस्तर के खंड गिर रहे हैं। तख़ता धनुष के जैसा तेड़ा हो चुका है और जो भी उसे देखता है वह उसकी आकार को देखकर दम्ब रह जाता है। बाबा उस तख़ते के कोनों में दीप रखकर उन्हें प्रज्वलित करके उस तख़ते पर सोते थे। यह केवल उनकी योगिक शक्ति थी कि वह बिस्तर वहाँ लटकता था। जिन गुदड़ियाँ से वह लटकता था उन्हें यदि कोई देखे तो पता चले कि वे इतनी जीर्ण हैं कि वे सामान्य भार भी नहीं संभाल पायेंगी। बाबा उस चमत्कारी बिस्तर पर किस तरह सोते थे उसका व्याख्यान मैं कैसे कर सकता हूँ? कुछ लोग जो इसके बारे में सुनते थे उनको लगता था कि यह सब मिथ्या है और यह अवश्य ही कोई आत्मबल का छलावा

है। इस कारण वे स्वयं रात्रि को मस्जिद जाते थे इस अद्भुत लीला को देखने के लिये।
क्रमश: भीड़ इतनी बढ़ती गई कि वह मस्जिद के शांतिपूर्ण वातावरण को दूषित करने लगा। बाबा इस अनचाही अतिक्रमण से विरक्त हो उठे और एक दिन उस बिस्तर को हटाकर उसका परित्याग कर दिया। बाबा की प्रसिद्धी देश के चारों कोनों में पहुंच चुकी थी। इस महापुरुष के दर्शन के लिये लोग आने लगे और अपने कष्टों के लिये वहाँ मन्नत मांगने लगे। बाबा की शक्ति से वह छोटा गाँव सारे देश में एक तीर्थस्थान के रूप में प्रसिद्धि पाने लगा। जैसे बाग़ की माटी का महत्व उसके फूलों से, जैसे कुन्दन के छिद्र का महत्व उसमें बिठाए गये नगों से, जैसे सोने को बांधने वाली पोटली का महत्व उसमे रखे सोने से होता है, ठीक उसी तरह शिरडी का नाम और प्रसिद्धि, बाबा के वहाँ रहने से होने लगी। उस असीम शक्ति वाले महाबली संत के दर्शन के लिये जनसमूह आने लगा।

पहले भोजन करो फिर जाओ

एक दिन कुछ लोग श्री साँई बाबा के दर्शनार्थ आए। पहले थे गोविंद चांदोरकर के पुत्र, नारायण चांदोरकर जो कि अहमदनगर के कलेकटर के कार्यलय में चिटणीस (सचिव) का कार्य करते थे। उन्हें सब लोग नाना साहेब बोलते थे। दूसरे थे व्यायी गाँव के रामदास जो कि ईश्वर की गाथा गायण में निपुण थे। तीसरे थे बापु नागरकर और चौथे कनगाओंकर। ये सब हनुमान जयंति (सबसे श्रेष्ठ श्री राम भक्त वानर भगवान का जनमोत्सव) के एक दिन पूर्व शिरडी पधारे। वे सब दिव्य साँई के दर्शनार्थ और उनका धर्मसिद्धांत सुनने आए थे। रामदास को सीना नदी के किनारे स्थित अहमदनगर में हनुमान जयंति के अवसर पर गाथा गायन करना

था, इस लिये जैसे ही श्री साँई बाबा के दर्शन हुए वे उस दल के सभी को प्रस्थान करने की जलदी करने लगे। उन्होंने उन सब को रेलवे स्टेशन ले जाने के लिये गाड़ी वाले को भी आवाज़ देना आरम्भ किया।

तब बाबा ने चांदोरकर से कहा, "पहले भोजन करो और उसके बाद ही प्रस्थान करो"। नाना असमंजस में पड़ गए। वे कनगाओंकर को साथ लिये व दल के शेष सदस्यों को भोजन कराते रहे। इधर रामदास उत्तेजित हो जलदी मचाते रहे और रेलवे स्टेशन के लिये तुरन्त प्रस्थान करने का हट करने लगे। बापू नागरकर ने पूछा, "आपकी जलदी क्या है?" रामदास ने उसी क्षण उत्तर देते हुए कहा, "मुझे कल अहमदनगर में भगवान की गाथा गाना है। हमने इस पागल व्यक्ति के साथ काफ़ी समय बिताया है। चांदोरकर सम्पन्न हैं, उन्हें अगले भोजन की चिन्ता नहीं है। यदि हम इसी क्षण प्रस्थान नहीं करते हैं तो मुझे भारी राशि की हानि हो जायेगी। इस साँई बाबा की बात सुनकर हमें क्या मिलेगा? मुझे एक पैसा भी यहाँ नहीं मिलेगा। चलिये तुरन्त रेलवे स्टेशन के प्रस्थान करें। ट्रेन आने का अब समय हो गया है। हम जिस कार्य के लिये आये थे वह तो परिपूर्ण हो ही चुका है।" वे बापु नागरकर पर भारी पड़े और वे दोनो स्टेशन के लिये चल दिये। बाबा के आदेशानुसार चाँदोरकर और कनगाओंकर शिरडी में ही रुक गये।

बाबा ने तब नानासाहेब से कहा, "आपने देखा लोग कैसा व्यवहार करते हैं? अपने साथियों को छोड़कर अपना स्वार्थ ढूँढने उसके पीछे भागते हैं। इसी लिये हमें उन्हें ही साथ लाना चहिये जो विश्वके अन्त तक हमारे साथ ऐसे रहे जैसे सुगंध पुष्प के साथ।"

उन सबने अपना भोजन समाप्त किया। बाबा ने कहा, "अब आप अपनी यात्रा प्रारम्भ कर सकते हो। मेरे शब्दों पर विश्वास रखो। ट्रेन आपसे छूट

जायेगी, इस चिन्ता से मुक्त हो जाओ। उसके आने में अभी समय है।" चाँदोरकर और उनके मित्र ने बाबा पर विश्वास किया। उन्होंने उनकी बात मानी और उन्हें भक्ति भाव से प्रणाम करने के पश्चात कोपरगाँव के लिये प्रस्थान किया। जैसे ही वे स्तेशन पहुँचे तो बापु नागरकर और रामदास को क्षुदा से आक्रान्त मुँह लटकाये हुये पाया। नानासाहेब को देखकर लज्जा से उनके सर झुक गये। नाना बोले, "अभी तक आप लोगों ने अहमदनगर के लिये प्रस्थान नहीं किया? लगता है अभी तक आपकी ट्रेन आई नहीं है।" नागरकर ने कहा, "ट्रेन आज तीन घण्टे विलम्ब से चल रही है। यह हमारा भाग्य है कि हमें आज व्रत रख कर भूका रहना पड़ रहा है। हमें उस महान सन्त साँई बाबा के वाक्यों की अव्हेलना करने का यह प्रसाद मिल रहा है।" ट्रेन आई और वे सब उस पर, अहमदनगर जाने के लिये सवार हुए। श्री साँई बाबा भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में सब जानते हैं। कभी उनके कथन वृथा नहीं जाते हैं। उस महान साँई बाबा, मेरे एक मात्र आश्रय को, मेरा प्रणाम।

एक मुक़दमा अप्पा के लिये

अप्पा शिरडी गाँव के कुलकर्णी (अर्थात रजस्व अधिकारी) थे। वे सर्वदा बाबा की सेवा में जुटे रहते थे। यह हमारे गत जन्मों के अर्जित की गई योग्यताएं हैं जो हमारी सोच को संचालित करती हैं और हमारे कर्मों को निर्देश देती हैं। अब सुनिये अपने पिछले जीवन के कर्म के फलस्वरूप अप्पा कुलकर्णी को क्या हुआ। उनके विरुद्ध ग़बन का मुकदमा दर्ज़ किया गया। केवल भगवान को ही मालूम था कि वे इस आरोप में निर्दोष थे या नहीं। लोगों ने अप्पा पर लांछन लगाना आरंभ कर दिया यह कहकर कि वे एक भ्रष्ट और झंझटिया व्यक्ति हैं। अप्पा ने गाँव वासियों की इस

चर्चा को सुना। उन्हें डर था कि कहीं साँई महाराज भी इस बात को सुनकर उनपर विश्वास न कर लें। जो राजस्व अधिकारी अप्पा के वरिष्ठ थे उन्होंने उनके विरुद्ध समन जारी कर दिया कि वे उनके विरुद्ध लगाये गये आरोपों के स्पष्टिकरण के लिये जाँच में आयें। अप्पा बहुत विचलित थे। उनको यह आशंका थी कि सम्भवत: वे जाँच के बाद शिरडी लौट ही न पायें। वे मस्जिद गये और उन्होंने बाबा को भक्तिपूर्ण प्रणाम किया। वे बोले, "हे गुरुओं में सर्वश्रेष्ठ, आप तो एक संत हैं। आप ही ईश्वर हैं। एक विशाल आपदा मेरे ऊपर आ मढ़ी है। बाबा मुझे ज्ञात है कि आप समय का नियंत्रण कर सकते हैं। आपको यह भी ज्ञात है कि यह अपवाद ग़लत हैं या सही। हे सर्वशक्तिमान! आप तो अंतर्यामी हैं। आप तो भूत, वर्तमान और भविष्य सब जानते हैं। इस से अधिक मैं क्या कह सकता हूँ? आप मेरी माँ भी हैं। मैं आपके पास आश्रित होने और आखरी उपाय पाने आया हूँ। आप ही मुझे इन कुत्सित अपवादों से बचा सकते हैं और मेरे मान सम्मान का उद्धार कर सकते हैं।" अप्पा ने बाबा के चरण पकड़ लिये और साष्टांग होकर फूट फूट कर वे रोने लगे।

"बाबा यदि मेरे साथ जाँच में कुछ बुरा हुआ तो उससे आपकी बदनामी और कुख्याती होगी। हे महान शक्तिशाली देव यह अपने मन में रखकर इन विपदाओं से मुझे मुक्त करिये। जब मेरे साथ स्वयं कुबेर (धन के देवता) उपस्थित हों तो मुझे घर घर जाकर भीक मांगने की क्या आवश्यकता है? जो बाल, उस मणिस्वरूप इच्छा पूर्ती करने वाली कामधेनु के भरपूर स्तनों से दूध पीते हों, दूसरी जगह दूध ढूंडने क्यों जाएँ? जब कल्पवृक्ष जो हर इच्छा की पूर्ती करता हो किसी के साथ हो, क्या उसे झाड़ियों में भटकना चाहिये?

क्या मछली दुग्ध के अथाह सागर को छोड़ नदियों में आश्रय लेतीं हैं? बाबा मैंने आपके चरण कमलों में शरण लिया है। आप ही मेरी माँ हो और पिता भी आप ही हैं, इस संकट से मेरा उद्धार करिये। यदि आप इस संकट से मुझे उबारेंगे तो आप ही के निवारणकर्ता की गाथा गायी जायेगी। दूसरी ओर यदि मुझे दण्ड मिला तो आप ही की ख्याति में एक काला धब्बा होगा। साँई मेरे प्रति कृपया अपनी दया और उदारता प्रकट करें।" अप्पा बाबा के सम्क्ष दीन भाव से उनकी दया की भीक मांगते रहे।

बाबा का मन पिघल गया। वे बोले, "आपको अब कोई चिंता करने की आवश्यक्ता नहीं है। मुझमें विश्वास रखो! यहाँ से निवासा गाँव चले जाओ। जो भगवान इस विश्व ब्रह्माण्ड को चलाने का अनदेखा निर्देशक का कार्यभार निभा रहे हैं, उन्होंने प्रवरा नदी के तट पर मोहिनी रूप धारण किया है। वे जिनको ज्ञानेश्वर ने 'भावार्थ दीपिका' (भगवद गीता पर अपना भाष्य) लिखते समय अपने आपको समर्पित कर दिया; वे जिन्होंने इस जगत के पाप के विनाश के लिये दस जन्म लिया और धर्म की स्थापना की, उसी अल्लाह-इ-इलाही ने इन मूर्खों के उद्धार के लिये जो अज्ञान में डूबे हुए हैं वहाँ अपने आपको प्रकट किया है। उन्हीं के पास जाओ। उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर अपने वरिष्ठ अधिकारी के पास जाओ। सबसे ज़्यादा रहमदिल अल्लाह तुम्हारा बचाव करेंगे। घबराओ नहीं।"

अप्पा कुलकर्णी प्रवरा नदी के तट पर स्थित मोहिनी राज के पास गये और वहाँ प्रणाम करने के पश्चात उस जगह गये जहाँ जाँच होने वाला था। वे श्री साँई बाबा का पवित्र नाम अपने वरिष्ठ अधिकारी के हर प्रश्न के उत्तर के पश्चात देते रहे। जाँच खत्म हुआ। अधिकरी ने कहा, "मेरा विश्वास है कि आपको मिथ्या आरोपों का शिकार होना पड़ा है। मेरी राय यह है कि आपने कोई भी पैसों की हेरा फेरी नहीं की है। आप यहाँ से

प्रस्थान करने के लिये मुक्त हो।" अप्पा ने शिरडी की ओर देखा और आनंदमग्न हो नृत्य करने लगे।
अप्पा ने बाबा का गुण गान किया। "साँई बाबा, आप भक्तों की इच्छा पूर्ण करने वाला कल्प वृक्ष हैं! आप भक्तों के रक्षक हैं! आपमें वैराग्य विराजता है। आपने मेरे प्रति बहुत दया प्रकट की है। आप ही की कृपा से मैं सफ़ल हो पाया हूँ। आपने मेरी मान को पुन: प्रतिष्ठित किया है, हे महात्मन् बाबा।"
अप्पा अगले दिन शिरडी पहुंचे और सीधे मस्जिद की ओर शीघ्रता से गये। उन्होंने बाबा को जाँच का वृत्तांत सुनाया। बाबा ने उन्हें चुप चाप सुना और बोले, "वे भगवान ही हैं जो कर्ता हैं और हम से कार्य करवाते हैं। वे सच्चे भक्त का आश्रय हैं। उनकी इच्छा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है।“

बाबा को पेंसे के विचार मालूम हैं

एक और अवसर पर, बाबा ने श्री नारायण कृष्ण पेंसे को अपनी शक्ति और दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन किया। पेंसे की पत्नी बहुत धार्मिक और महाव्रती थीं। वे बहुत दयावती भी थीं। जब से उन्होंने बाबा के बारे में सुना तब से वे उनकी दर्शनाभिलाषी भी हो गयीं। एक दिन उन्होंने अपने पति से आग्रह किया, "मेरी विनती सुनिये, मुझे सुना है कि शिरडी में अद्‌वितीय तथा दिव्य साँई बाबा विराजते हैं, चलिये उस जगह जो उनकी प्रभा से पावनतम और पवित्र बन चुकी है और उस महान आत्मा के दर्शन करें। चलिये उन पावन चरणों के परमानंद में अपने आप को दुबो लें।" पेंसे ने उत्तर दिया, "शिरडी में कोई दिव्य पुरुष नहीं है। जो है वह केवल एक सर फिरा मुसलमान है। वह पूर्णत: पागल है। वह वहाँ इस लिये बसा हुआ है ताकि वह उसका एक मात्र उद्‌येश्य की प्राप्ति कर सके जो कि

सारी दुनिया को ठगना और निर्धन सरल लोगों से उनका संचित धन ऐंठ लेना है। कुछ भोले भाले लोग उसे भगवान भी मानते हैं। प्रिये मेरी बात को सुन उनपर विश्वास मत करो। अपने विश्वास पर अड़े मत रहो। तुम्हें वहाँ जो मिलेगा वह अमृत नहीं बल्कि बंजर खारा नमक के बर्तन का अवशेष। क्या निम्न प्रकार के टीन से सोने की उत्पत्ति हो सकती है? उस पागल फ़कीर के जाल में मत फंसो। वह केवल एक भिकारी है जो अपना पेट भरने के लिये शिरडी के घर घर जाकर भीक मांगता है।" पेंसे की पतनी अपने पति के इन तिरस्कारी शब्दों को सुनकर बहुत दुखी हुईं। उस महान आत्मा के दर्शन के लिये वह अपनी बारी की प्रतीक्षा करती रहीं। "कब मुझे उस महान संतों के मणि के कमल जैसे चरणों के दर्शन प्राप्त होंगे?" पेंसे की पत्नी सोचती रहीं। एक बार पेंसे को आधिकारिक भ्रमण पर जाना पड़ा तो पेंसे ने अपनी पत्नी को उस भ्रमण में साथ लिया। भ्रमण शिरडी का था। क्योंकि पेंसे को सरकारी कार्य में व्यस्त रहना था, उनकी पत्नी दिन भर शिरडी में क्या करेंगी उसका निर्णय लेने में वह स्वतंत्र थीं। वे उत्साह पूर्वक मस्जिद में गयीं और उस दयालु संत बाबा के समक्ष उन्होंने साष्टांग नमस्कार किया। उन्होंने अपना मस्तक उनके चरणों में रखा, वे चरण जो भक्तों के लिये संकट्मोचक और आश्रय देने वाले थे। उन्हें उसी समय उस उत्कृष्ट महात्मा जो सांसारिक जीवन के कष्टों तथा क्लांति का निवारण करते हैं, के दर्शन से एक मानसिक शांति की अनुभूति हुई।

बाद में उन्होंने अपने पति को अति आनंदित हो सारा वृत्तांत सुनाया। "मैंने उस दया के सागर श्री साँई बाबा के दर्शन किये। वे वास्तव में सभी गुणों के भंडार हैं। मैं चाहती हूँ कि आप उस संतों के मणि के विषय में अपनी समालोचना और कुशब्द बंद करें और तुरंत उनके दर्शन करें।" पेंसे अपनी

पत्नी के इस हठ को अस्वीकार नहीं कर पाये और श्री साँई बाबा के दर्शन के लिये गये। बाबा पेंसे को देखते ही उच्य स्वर में बोलने लगे, "तुम निकट मत आओ।" उन्होंने पत्थर उठाकर उन्हें धमकी दी। "एक क़दम आगे बढ़ाया तो देखो क्या होता है। मैं इस पत्थर से तुम्हें मारूंगा। मैं तो एक मायावी और पाखण्डी हूँ। मेरे दर्शन करने की क्या आवश्यकता है? मैं एक निम्न जाति का, पागल मुसलमान हूँ जिसे केवल धिक्कारा जा सके। तुम एक उच्यतम कोटी के ब्राह्मण हो। इस मस्जिद में आने से तुम उच्छिष्ट हो जाओगे।" पेंसे ने अचंबित हो चुप्पी साध ली। वे अपनी धृष्टता की विशालता से डर गये। "यह साँई महाराज तो सर्वज्ञ हैं। यह तो भूत, वर्तमान, भविष्य सभी जानते हैं और अपनी हाथों की रेखाओं को भी पहचानते हैं। यह तो ज्ञान के पर्वत हैं। जितनी भी बातें मैंने अपने घर के एकांत में उनके विरुद्ध की हैं, उन्होंने बिना किसी त्रुटि के सब गिना दिये। अवश्य ही वे ऐसे महान संत हैं, जो मन में अंकित सभी बातों को पढ़ सकते हैं। वे पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हुए अप्पा कुलकर्णी के पास गये और उनकी सहायता से अंतत: उन्होंने उस परिपूर्ण ब्रह्म, योगीयों में सर्वश्रेष्ठ, साँई बाबा का दर्शन किया।

अप्पा के मृत्यु की भविष्यवाणी

अब भक्तगण उस घटना पर ध्यान दें जो कुछ दिन बाद घटी। बाबा ने एक दिन अप्पा से कहा, "हमारे गाँव में कुछ चोर घुस आये हैं। वे साधारण चोर नहीं हैं। उनकी कार्यशैली बिलकुल अलग है। वे हर घर में घुस कर उसका निरीक्षण करते हैं। वे हर घर के केवल सबसे मूल्यवान वस्तुओं को चुराते हैं। वे अपने कार्य में इतने निपुण हैं कि किसी को पता भी नहीं लगता है कि उनके घर में चोरी हुई है। वे सबसे पहले आप ही के घर में

आने वाले हैं। आप अपने घर जाओ और उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करो।" अप्पा बाबा के शब्दों का रहस्य और उनकी भीतरी भाव को समझ न पाये।

वे घर की सुरक्षा के लिये कुछ लोगों को भाड़े पर ले आये और वे स्वयं भी उनके साथ उस रात खड़े रहे। रात्री होने के दो एक घंटे बाद अप्पा को उलटियाँ आने लगीं और दस्त भी आने लगे। वे उस भयानक रोग से आक्रांत हो चुके थे जिसे हैज़ा कहते हैं। उनके शरीर का तापमान नीचे जाता रहा और वे दर्द में मरोड़ खा रहे थे। उनकी आंखें स्थिरता खो बैठीं और बाहर निकल आईं। उनकी नाड़ी की गति पकड़ में नहीं आ रही थी। गाँववालों ने अप्पा की स्थिति देखी और दुखी हो गये, यह सोचते हुए कि अब उनके प्राण की रक्षा कठिन है। अप्पा की पतनी, उनकी मृत्यु सन्निकट देखते हुए, उस दया के पर्वत और सारे विश्व में एक मात्र आश्रय के पास मस्जिद में तुरंत दौड़ती हुई गईं। वे बाबा के चरणों पर गिर पड़ीं और चक्षु से अश्रुओं की धाराओं को बहाते हुए उन्होंने विनती की, "मेरे पति अपने जीवन के आखरी क्षणों में हैं, कृपया अपने आशीर्वाद के साथ कुछ ऊदी भी दें। वह उनको बचा लेंगे और मृत्यु जो कि समीप है उसके द्वार से उन्हें वापस ले आयेंगे। मुझे अधम विधवा अवस्था से रक्षा करें।

बाबा ने कहा, "हे माँ, आप रोयें नहीं। जो जनम लेता है उसे किसी न किसी दिन मरना पड़ता है। सर्वशक्तिमान ही जन्म, जीवन और मृत्यु के निर्णय लेते हैं। वे सभी में और सर्वत्र विराजमान हैं। कौन जन्म लेता है? और कौन मृत्यु से ग्रसित होता है? अपने आप को वश में रखकर इस बात पर आसक्तिहीन होकर और सच्चे ज्ञान के माध्यम से चिंता करो। आपको भी सत्यता का आभास होगा। जो वस्त्र हम पहनते हैं, वो यदि फट जाए तो हम उसका त्याग कर देते हैं। जितनी भी उसके प्रति हमारी

पसंद थी हम उसे भूल जाते हैं। वह सर्व दयावान ईश्वर ने भी हमारी आत्मा को इस शरीर के वस्त्र से ढक दिया है। वह आत्मा ही चिरंजीवी, असीमित, अखण्डित, निर्गुण, निराकार ब्रह्म है। अप्पा के त्याग किये हुए जीर्ण देह से मोह न करो और उस पर उदी लगाकर उसे बचाने की चेष्टा मत करो। अप्पा के मार्ग में बाधा बन उन्हें क्षति मत पहुँचाओ। उनके भाग्य ने उनके लिये जो गंतव्य स्थान निर्धारित किया है, वहाँ उन्हें पहुंचने दो। जिस समय मैं आप से यहाँ बात कर रहा हूँ वे अपने जीर्ण देह के आवरण को छोड़ चुके होंगे। अब और हस्तक्षेप न करो।

अप्पा निर्वाण प्राप्त करेंगे। आप इन सांसारिक चक्षुओं से उसे देख न पाओगे। जो हो रहा है उसे होने दो। बाबा ने इस तरह उन्हें सांत्वना दिया और इस तरह अप्पा की मृत्यु उन्होंने स्वीकारा। जब तक वे घर पहुँची तब तक अप्पा का निधन हो चुका था।

अगले दिन दो से तीन लोगों की हैज़ा का शिकार होकर गाँव में मृत्यु हो गयी। गाँववासी इस प्रचंड विपत्ती से घबरा गये और उनके एक मात्र आश्रय बाबा के पास गये। उन्होंने उनसे आग्रह किया,"बाबा, हैज़ा गाँव में मृत्यु का नाच, नाच रहा है। कुछ कीजिए और उसे गाँव से बाहर कर दीजिए। यदि हम सब की हैज़े से मृत्यु निश्चित है तो फिर आपके यहाँ होने का क्या लाभ?"

बाबा ने उत्तर दिया, "सात लोगों को इस गाँव में मरना है। उसके बाद ही हैज़ा यहाँ से पलायन करेगा।" उनकी यह बात सत्य निकली। हैज़े के कारण शिरडी में सात लोगों की मृत्यु हुई। उसके पश्चात कोई भी मृत्यु नहीं हुई। कितना अद्भुत है बाबा का ज्ञान। जो वे कहते हैं वह होकर रहता है।

इसके पश्चात क्या हुआ मैं आपको बताता हूं। आप श्रोतागण सब दयावान हैं और ज्ञान के भंडार हैं। मैं तो आपके समक्ष केवल एक शिशु मात्र हूँ और आपलोग दयालु हैं तथा प्रेम से मुझे मेरे प्रलाप को सुन रहे हैं। मैं आगे जो बताने वाला हूँ उसे शुद्ध भाव और सहिष्णुता वाले हृदय से सुनिये।

मारवाड़ी के सूखे घास का टाल

कोंडेया (कोंडाजी) बाबा के उत्कट भक्त थे। एक बार बाबा ने उनसे कहा, "कलवाड़ी में (युक्त स्थान जहाँ सभी गाँववालों के घास के टाल अवस्थित थे) तुम्हारे घास के टाल में आग लग गयी है। जाओ और उसे बुझा कर आओ।" कोंडेया चिंतित होकर कलवाड़ी भागते हुए गये। वे वापस आये और बोले, "इस तपती हुई धूप में बाबा आपने मुझे व्यर्थ ही दौड़ाया। वहाँ तो कुछ भी नहीं जल रहा है।" बाबा ने उत्तर दिया, "मैं कभी असत्य नहीं बोलता हूँ। दुबारा जाकर अपनी टाल का निरीक्षण करो।" कोंडेया कलवाड़ी की ओर मुड़े और तो देखा कि वहाँ से धूआँ निकल रहा है। वे भागते हुए वहाँ पहुँचे, और देखा कि उनका टाल जो दूसरे टालों के बीचों बीच अवस्थित था, जल रहा है। गर्मियों के मध्य की बात थी। मध्यान्न की धूप की किरणें निर्दयी होकर जला रही थीं। वायु भी पेड़ों को भेदते हुए तेज़ गति से बह रहा था, मानो कोई भयंकर आपदा आने वाला हो। अग्नि की लपटें आकाश की ओर बढ़ रहीं थीं जैसे कि सूर्य देव से वार्तालाप करना चाह रही हों। सभी गाँववाले बाबा के पास दुखी होकर दौड़ते हुए पहुँचे। उन्होंने रोना आरम्भ कर दिया, "हे करुणासागर, अब हमारा भाग्य क्या है? कलवाड़ी जल रहा है। उसमें हमारे प्राण बसे हैं। पूरे वर्ष के चारा की पूंजी वहाँ एकत्रित है। यदि वह जल गया तो मवेशी क्या खायेंगे? वे सब मर

जायेंगे। कुछ करिये और हमें इस विपदा से बचाइये। आप ही सर्व ज्ञान के निवास श्री हरि हैं। उनके भक्तों की दुर्दशा देख बाबा का मन पिघल गया। उन्होंने कृपापूर्वक उनकी प्रार्थना को स्वीकारा और कलवाड़ी गये।
उन्होंने थोड़ा सा पानी हाथ में लिया और उसका जलते हुए टाल के आस पास छिड़काव किया। उन्होंने कहा, "केवल यही टाल जलेगा और दूसरा कोई भी नहीं। शेष सभी टाल सुरक्षित रेहेंगे। उनपर पानी डालने की निरर्थक चेष्टा कर अपने आप को कष्ट मत दो। जो मैं कहता हूं वही होगा।" और वही हुआ जो बाबा ने कहा। केवल कोंदेया का टाल जला और बाक़ी सभी टाल सुरक्षित रहे, यद्यपि वायु बहुत ही तीव्र गति से बह रहा था। सभी ग्रामवासी बहुत उल्हासित हुए क्योंके उनके टाल सुरक्षित थे और उनके मवेशी हेतु आने वाले पूरे वर्ष के लिये पर्याप्त चारा उपलब्ध था। बाबा ने अग्नि को वश में रखा। प्रकृति भी महान संतों के आदेशों का पालन करती है। सारे विश्व के रचना कर्ता और सत्चिदानंद के मूर्त रूप - श्री हरि भी इन संतों की सेवा में व्यस्त होकर जुटे रहते हैं।
एक संध्या को, नाना साहेब चांदोरकर जो कि अब तक तेह्सीलदार (भारतवर्ष में राजस्व और कर संबंधित जिला अधिकारी) हो चुके थे, एक दल के साथ श्री साँई बाबा के दर्शन हेतु शिरडी पधारे। बाबा बोले, "हे भले आदमी, गोविंद नारायण के पुत्र जो चांदोरकर कुल के वृक्ष के मणि हो! क्या तुमने देखा कि आजकल लोग कितने स्वार्थी हो गये हैं? आज भागचंद मारवाड़ी का टाल भस्म होकर मिट्टी में मिल गया है। वह अब मुझे अपनी क्षति के विषय को लेकर परेशान कर रहा है। जन्म, मृत्यु, लाभ एवम क्षति सब सर्वशक्तिमान की इच्छा से होते हैं। उस सर्वशक्तिमान को ये अंधे लोग कैसे भूल सकते हैं? जब उन्हें लाभ होता है तो वे खुश होते हैं और जब क्षति होती है तो वे रोते हैं। 'मेरा' शब्द का कोई अर्थ है

क्या? हम यह अनुमान लगाते हैं कि वह टाल उसका है, परंतु वह तो मवेशियों को बचाये रखने के लिये उनको खिलाने के काम आता है। उसकी बढ़ौत्री तब होती है जब उसके बीज मिट्टी में गिरते हैं। जब बीज बोये जाते हैं तब मेघ वृष्टि के पानी को बरसाते हैं जिससे वे प्रस्फुटित होते हैं। सूर्य की मंद किरणों से उन्हें जीवन और संवृद्धि प्राप्त होती हैं। बीज के असली मालिक तो वे हैं जो उनका पोषण करते हैं - भूस्थल, वृष्टि और सूर्य। किंतु ये अबोध लोग तो उन्हें गर्ववश अपना मानते हैं। सूर्य की किरणों के ताप से अग्नि की उत्पत्ति हुई और उस अग्निकाण्ड से टाल ध्वस्थ हुआ। धरती ने अग्नि के ताप को धैर्य से सहा। मेघों को इसके बारे में जानकारी नहीं थी। जैसे वे दंभ के संतान हों। वे बिजली के क्षणिक सौन्दर्य से मुग्ध होते हैं और जैसे भ्रमित प्रेमी महिलाओं की सुंदरता में लिप्त रहते हैं उसी तरह इनकी दृष्टि दूसरों के साथ अच्छे और बुरे का फ़र्क महसूस नहीं कर पाते हैं। जैसे बादल बेपरवाह हो अनदेखी कर रहे थे, सूर्य ने अपना अवसर देखते हुए टाल को जला डाला। धरती ने जले हुए भस्म को आश्रय दिया बिना किसी भेद भाव के ठीक उसी तरह जैसे वह बीज को या टाल को देती है। इस विश्व की वस्तुओं के हम स्वामी नहीं हैं। उसे समझाओ कि वह व्यर्थ में दुखी न हो। जब से यह काण्ड हुआ है तब से वह मेरे समीप आ रोता रहता है और मुझे तंग करता रहता है।

सर्वशक्तिमान प्रभु एक हाथ से देते हैं और दूसरे से लेते भी हैं। अज्ञानतावश लोग इसे उल्हासित या दुखी होते हैं।" बाबा भागचंद मारवाड़ी जो कि निकट ही था की ओर मुड़े और बोले, "हे सेठ घर जाओ और निश्चिंत हो सो जाओ। इस क्षति की पूर्ती किसी और करोबारी आदान प्रदान में हो जायेगी। चिंता मत करो।" सांत्वना प्राप्त सेठ घर चले गये।

एक निमित्त मात्र विलंब न करते हुए तुरंत वापस लौट जाओ

चाँदोरकर और कुछ अन्य बाबा के आदेशों की वृष्टि के आनंद से द्रवित थे। चांदोरकर ने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक बाबा से विनती की, "हे भक्तों के आनंद प्रदाता! आप वह पूर्णिमा हैं जो अपने भक्तों को अपनी शीतल किरणों से सुख प्रदान करते हैं! हे ज्ञान के सागर! हमारी अज्ञानता को हर लीजिये और हमें ज्ञान दीजिये। भगवान कौन हैं? वे कैसे प्रतीत होते हैं? वे कहाँ रहते हैं? उनके दर्शन पाने के लिये हमें क्या करना होगा? यदि यह संसार क्षणिक और अस्थायी हैं तो हमें इन दैनंदिन सांसारिक कार्यों में क्यों उलझा रहना पड़ता है? इन असमंजस में डालने वाले तथ्यों के रहस्य को उजागर कीजिये।" बाबा ने संवेदनापूर्ण स्वर में कहा, "इन प्रश्नों का उत्तर मैं तुम्हें किसी और दिन दूंगा। अभी एक क्षण भी नष्ट न करते हुए, तुम तुरंत अपने घर जाओ।"

अन्य भक्तों में जो चाँदोरकर के साथ आये थे, एक थे गणेश विष्णु बेरे। वे जिला कृषि अधिकारी थे। वे बाबा के दर्शन मात्र के लिये विशेषत: शिरडी आये थे।

उनकी एक मात्र इच्छा थी कि वे कुछ समय बाबा की उपस्थिति में बितायें। चाँदोरकर ने बाबा को प्रणाम कर बेरे की इच्छा उन्हें व्यक्त की। बाबा बोले, "चाहे कुछ भी तुम्हारे आने का कारण हो तुम्हें तुरंत लौटना होगा। एक पल भी देर मत करो। समय नष्ट मत करो। शीघ्रातिशीघ्र घोड़ा गाड़ी में बैठ अपने ट्रेन के लिये कोपरगाँव पहुंचो।" बाबा के शब्दों पर चाँदोरकर और बेरे का अटल विश्वास था। वे तुरंत एक घोड़ा गाड़ी में कोपरगाँव के लिये रवाना हो गये। उन्होंने गाड़ी हांकने वाले को और तेज़ गाड़ी चलाने को कहा मानो वे बाबा के शब्दों को पूर्णत: साकार करना चाहते हों। रास्ते में वे एक और घोड़ा गाड़ी से आगे निकल गये जो कि आराम से अपनी

गति से अग्रसर हो रहा था। उस गाड़ी के सवारियों ने आवाज़ लगाई, "आपको जलदी क्या है, विश्रांति बनाईये और घोड़े को थोड़ा धीरे धीरे चलने दीजीये। ट्रेन के आने में अभी बहुत समय है। वाघ से बचने के लिये हिरण जैसे मत दौड़िये।" बेरे ने इस बात की अवहेलना करते हुए गाड़ी वाले को घोड़े को और तेज़ भगाने को कहा। चाँदोरकर और बेरे ने गोदावरी नदी पार की और रेलवे स्टेशन पहुँच गये।
उनको बाद में यह ज्ञात हुआ कि जो धीमी गति से उनके पीछे घोड़ा गाड़ी आ रही थी वह सड़क के डकैतों द्वारा लूट ली गयी। न केवल उनके पैसे लूट लिये गये बलकि उनकी डकैतों ने अच्छी खासी पिटाई भी की जिससे उन्हें बहुत चोट आई। पुलिस ने भी इस प्रसंग में जाँच की। यह खबर सुन बेरे बाबा के प्रति आभार हुए। उन्होंने मन ही मन प्रार्थना की, "हे सदगुरु आपने हमें, अर्थात अपने संतान को बचाया। अब मुझे समझ में आया कि क्यों आपने हमें जलदी करने को कहा और तुरंत निकलने के लिये कहा।" उन्होंने मन ही मन उन को हानि से बचाने के लिये बाबा को पूर्णत: हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की।

हरि पंत निस्संतान है

पुणे में वशिष्ठ गोत्र के एक ब्राह्मण रहते थे। उम्र के साथ साथ उनके बाल भी पक चुके थे। वे ज़मींदारी वर्ग के थे और आर्थिक रूप से सुसम्पन्न थे। वे दयालु प्रकृति के भी थे। उनका झुकाव आध्यात्मिक कार्यों की ओर था और वे अपनी पूजा पाठ नियमित रूप से सभी पद्धतियों सहित करते थे। वे अग्नि के उपासक थे और उन्हें रोज़ाना पूजते थे। उनका नाम हरि पंत था। उनकी पत्नी का एकाएक निधन हो गया। वे इस बात से चिंतित थे कि वे अपनी पत्नी के बिना कैसे अग्निदेव की आराधना करेंगे। उनका

कोई संतान न था। वे विशाल भूसंपत्ती के स्वामी थे। क्योंकि उनकी आयु पचास वर्ष से उपर हो चुकी थी उन्हें दूसरा विवाह करने की कोई इच्छा नहीं थी। गाँव वालों ने उनसे कहा, "कृपा करके द्वितीय विवाह कर लो। एक अच्छी लड़की ढूंड लो जो तुम्हें मिल जयेगी। शास्त्रों में उल्लेख है कि इमानदारी से प्रयास करें तो श्री हरि भी प्राप्त हो जाते हैं।" हरि पंत इन बातों से प्रभावित तो हुए पर उन्होंने अपने दूसरे विवाह हेतु पात्री ढूंडने के लिये कोई विषेश चेष्टा नहीं की। "पानी रहित फ़सलों को उगाना तथा बिना पत्नी संतान की अपेक्षा करना कैसे संभव हो सकता है?" हरि पंत सोचते रहे। जो भी उनसे भेंट करते वे उन्हें यही बताते, "यदि मेरी प्रार्थनाएँ फल दें और बाबा मुझे आशिर्वाद दें तो मैं अवश्य किसी गुणवती से विवाह कर पाऊंगा। यदि मुझपर लोग हसते हैं तो हसें। मैं पचास वर्ष की आयु पार कर चुका हूँ। यदि मेरा विवाह भी होता है तो मैं निश्चित नहीं हूँ कि मुझे संतान प्राप्त होगा। इन सब के बावजूद मैं विवाह करूंगा और संतान प्राप्त करूंगा यदि बाबा मुझे एक बार आशीष देदें।"

एक बार यह ब्राहमण शिरडी गया और श्री साँई बाबा का दर्शन किया। बाबा बोले, "ओ हरि तुम वास्तव में बहुत भाग्यशाली हो। शीघ्र विवाह करो। उस दयावान परमात्मा की कृपा से तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा। तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। कोई शंका या दुविधा में मत रहो। वे भोलेनाथ जिस भगवान के हाथ में त्रिषूल रूपी अस्त्र है, वे भगवान जिनके सिर पर चन्द्रमा सुसज्जित है, वे सर्वशक्तिमान तुम्हारे पक्ष में खड़े होकर तुम्हारा बचाव कर रहे हैं।" सब लोग बाबा के शब्दों से खुश थे। वे बोले, "यह हरि पंत के लिये अच्छा शकुन है कि उन्हें बाबा के आशीर्वाद प्राप्त हुए।" हरि पंत ने कहा, "यदि ज्योतिषीगण भी सहमत हुए, तो मैं तुरंत विवाह कर लूंगा।" वे अपने गाँव के लिये रवाना हो गये। ज्योतिषियों ने भी घोषणा

कर दी कि ग्रहों की स्थितियों और उनकी राशिफल के अनुसार वह समय विवाह के लिये अनुकूल था। बाबा के आज्ञानुसार उन्होंने विवाह कर लिया। बाबा की कृपा से पुराना मृत काष्ठ भी, जो केवल जलाने योग्य हो, प्रस्फुटित हो खिल जाता है। बाजरे का पौधा घुटनों तक पहुँच चुका है। यदि बाबा की कृपा पर्याप्त वृष्टि के रूप में बरसे और मृदुमंद वायु के दयायुक्त प्रभाव हों, क्या फ़सल की उपज अच्छी नहीं होगी? हरि पंत, वह परंपरानिष्ठ ब्राह्मण ने बाबा में पूर्ण विश्वास रखना प्रारंभ कर दिया था। उसने सर्वसमर्थ बाबा को भक्ति और कृतज्ञता पूर्ण भाव से प्रणाम किया। बाबा तो अनुकंपा के पर्वत हैं। उत्कृष्ट ज्ञान के आकाश में पूर्णिमा के चंद्र जैसे महिमापूर्वक चमकते हैं। जो कुछ भक्त मांगता है उसे प्रदान करने वाले कामनापूर्ती के चिंतामणि हैं। उनके दिव्य चरणों के नियमित स्मरण से सभी विपत्ति और कष्ट लुप्त हो जाते हैं। सपने में भी उन्हें भूलना नहीं। आप उनकी कृपा पूर्णत: प्राप्त करेंगे। सभी कल्याण आपके होंगे। वे दयालु बाबा सम्पूर्ण प्रेम सहित अपने हृदय से हम सबको लगा लेंगे।

जो भी श्री साँई बाबा के इस इतिहास को प्रेमपूर्वक नित्य पढ़ेगा उसे सर्वसमर्थ श्रीमंत संरक्षण देंगे। यह सत्य है। अगला अध्याय बहुत गंभीर, गुरुत्वपूर्ण और महत्वपूर्ण है। वह पुरुषार्थ के मूल सार को समझाता है। उस अध्याय में दिये गये सभी निर्देशों को पढ़ने से तथा उनका पालन करने से सभी पुरुषार्थ प्राप्त होंगे। कृपया दास गणु के श्री साँई बाबा के समक्ष साष्तांग होकर, शिशु जैसे वचन का श्रवण करें। उस महान महात्मा के द्वारा सभी इच्छाओं की पूर्ति होगी। दास गणु 'भक्त लीलामृत' से इस गान के गायन द्वारा बाबा के इतिहास का सूक्ष्म वर्णन, बिना किसी स्वार्थ के कर रहे हैं। यह इतिहास दिव्य है। जो इसका अध्ययन करते हैं उनके

पाप नष्ट हो जाते हैं। सर्वसामर्थ ईश्वर सर्वदा उनके साथ उनकी रक्षा और उनका पालन करेंगे।

’भक्त लीलमृत’ में दर्शाया गया श्री साँई बाबा का इतिहास वास्तव में बहुत पावन है। यह दिव्य अमृत है। श्री साँई बाबा के सेवक दास गणु आप सभी से विनती करता है कि इस अमृत का जी भरकर पान करें। सबका भला हो।

यहाँ दास गणु महाराज के लिखे गये ’भक्त लीलामृत’ के ३१वे अध्याय का अंत होता है।

अद्ध्याय □ो

जागृति की प्राप्ति कैसे की जा सकती है

श्री गणेश को मेरा प्रणाम। हे शुद्ध आत्मबोध के साकार रूप! हे विश्व के स्वामी! हे कृपालु! आप दीप्तिमान हैं, निर्गुण हैं तथा उस स्थिति में हैं जिससे सर्वदा भिन्न स्थितियों को पार करने में सक्षम हैं। आप अदृश्य हैं और स्थान, समय तथा कारण से परे हैं। आप ही हमारे माता पिता और सर्वस्व हैं। हे स्वामी! आपकी वास्तविक रूप हमारी समझ से बाहर है। आपके वास्तविक स्वभाव तो वेद भी वर्णन नहीं कर पाते हैं और केवल उस दयनीय स्थिति में परिवर्तित हो जाते हैं जहाँ नेति (यह भी नहीं) नेति (यह भी नहीं) से ही व्याख्या समाप्त करना पड़ता है। वशिष्ठ और भृगु जैसे महान ऋषि जो कि ज्ञान के संतान थे और जो कि अज्ञानता के तिमिर को आत्मज्ञान से दूर कर सकते थे, ने भी आपका वर्णन करना असंभव पाया। मैं जो कि उनके समक्ष एक तुच्छ जुगनु जैसे कीट हूँ, कैसे उस कार्य को कर सकता हूँ? हे स्वामी मैं आपकी उस दयालु कृपा की अपेक्षा के ज्वर से तप रहा हूँ कि कब आप मुझ में समायेंगे। मैं आपको तथा आपके चरण कमल को नहीं भूल सकता। कृपया मेरे हृदय में वास कर, मुझे कलम जैसे उपयोग कर इस पुस्तक को लिखवाईये।

एक दिन पवित्र और धर्मात्मा नाना सहेब चाँदोरकर तथा नाना सहेब निमोनकर श्री साँई बाबा के दर्शन हेतु शिरडी पधारे। नाना साहेब ने बाबा के चरणों में प्रणाम कर उनसे प्रार्थना की, "हे साँई महाराज, हे सर्वसमर्थ! यह सांसारिक जीवन मेरे लिये नहीं है। सभी शास्त्र बताते हैं कि यह सांसारिक जीवन निरर्थक है। हे विनीत और पददलितों के रखवाले! कृपया

इन सांसारिक बंधनों को जो हमें आसक्ति की बेड़ियों में उलझा कर हमारी प्रगति में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं, उन्हें भेद कर अलग कर दीजिये। जिस अभिराम को हम खोज रहे हैं वह हमें व्यथा से त्रस्त और उत्पीड़ित कर रहा है। अभिलाषाये हमें अपने सनक पर नचा रही हैं। चाहे जितना भी खोज हेतु प्रयास करें, इस संसार में सच्चे आनंद की प्राप्ति नहीं हो पा रही है। मैं इस जीवन से विरक्त हो चुका हूँ। मुझे अब ये सांसारिक उलझनें नहीं चाहिये।"

चाँदोरकर को जो कहना था वह बाबा ने धैर्य सहित सुना। वे बोले, "कहाँ से तुम्हें यह ऊट पटांग विचार प्राप्त हो रहे हैं? तुम्हारी बातों में कुछ सत्य है पर कुल मिलाकर तुम मार्ग से हट चुके हो। तुम भले ही सांसारिक तत्वों से भागना चाहते हो परंतु वे तुम्हें भागने नहीं देंगे। वे हमेशा तुम्हारे साथ चिपके हुए रहेंगे। उनके चुंगल से बचने की क्षमता किसी में नहीं। मैं ही उनसे पीछा नहीं छुड़ा पाया और तभी इस देह में फंसा हुआ हूँ। तुम कैसे इन जंजालों से मुक्त हो सकते हो? इस संसार के कई विशेषताएं हैं। मैं इन्हें समझाता हूँ। जब काम, क्रोध, लोभ, भ्रांति, अहंकार और ईर्षा अहम से जुड़ा होता है तब वह सांसारिक हो जाता है। यही संसार है। आंखें वस्तु देखती हैं, कान सुनते हैं, जिव्हा स्वाद लेता है - यह भी संसार है। यह संसार सुख एवम का दुख का मिश्रण है। ये किसी को नहीं छोड़ते। उनकी चुंगल से कोई भी बच नहीं पाता है। तुम सोचते हो कि धन, पत्नी और संतान ही संसार हैं। अब तुम इनसे ऊब चुके हो। परंतु वे - तुम उन्हें छोड़ना भी चाहो, पत्नी, संतान, भाई तथा बहन, सम्बंधी तुम्हें नहीं छोड़ेंगे। इन सब के कारण हैं तुम्हारे प्रारब्ध कर्म। यह जान लो कि तीनों जगत में इनका अनुभव किये बिना तथा भोगे बिना किसी को छुटकारा नहीं मिल पाता है।" चाँदोरकर ने बाबा की बातें सुनी। उन्होंने उत्तर दिया,

"आपने जो कुछ भी कहा वह ईश्वर की देन हैं और उनकी रचना है, और जो अंत में उल्लेखित है - प्रारब्ध, वह मेरी अपनी रचना है। इस सांसारिकता से ऊब चुका हूँ। मुझे सभी उलझनों से उद्धार कीजिए और मुझे किसी भी तरह इनसे मुक्त कीजिए।"

बाबा हंसे, "सभी तुम्हारी रचना है। अब पछतावा करके क्या फ़ायदा? यह सब तुम्हारे पिछले जन्मों के कर्मों का फल हैं, प्रारब्ध कर्म के फल। हमारे इस संसार में जन्म लेने का मुख्य कारण प्रारब्ध ही है। प्रारब्ध से कोई नहीं बच पाता है। यही कारण है लोगों के जन्म लेने का। ग़रीब, मध्य वर्गीय, अमीर, अन्य, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, सन्यासी, उच्य और क्षमताशील, निम्न और विभिन्न प्रकार के कई लोग। कई पशु भी हैं जैसे घोड़े, मवेशी, सियाड़, चिड़िये, वाघ, भेड़िये, कुत्ते, सूअर, बिल्ली, सर्प, बिच्छु, चींटी तथा कीट। जो जीवन उनके भीतर बसता है वह समान है। पर एक सामान्य देखने वाले की दृष्टि में ये सब पृथक नज़र आते हैं। क्या तुमने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों है? उनके संचित कर्म ही के कारण वे पृथक दिखते हैं। वे उनके शरीर के अनुसार ही अपना जीवन यापन करते हैं और उसी तरह की विशेषताएँ उपलब्ध करते हैं। इन सब शरीरों को देखकर ऊब जाने का उद्येश्य क्या है? वाघ माँस खाता है, सूअर मल खाता है। भेड़िया मृत व्यक्ति के देह को ज़मीन से उखाड़कर चाव से भक्षण करता है। यह उनके शरीर की प्रवृत्ति है जो उनसे यह कराती है। हंस कमल के कोमल पत्तों को खाता है; शकुन दुर्गंध वाले सड़ते हुए माँस को खाता है। जो जिस शरीर में जन्म लेता है वह उसकी प्रवृत्तियाँ उपलब्ध करता है। यह प्रकृति का नियम है। प्रकृति के इस नियम के अनुसार हर प्राणी को प्रारब्ध कर्म भोगने पड़ते हैं। देखो नाना! कुछ सिंह जंगल में खुले घूमते हैं - जितना भी वे सर्वेक्षण करते हैं, उसके स्वामी की तरह। कुछ सिंहों को पिंजरे में

बंद गाँव गाँव घुमाया जाता है। अमीर का कुत्ता रेशम के गद्दे पर सोता है। कुछ कुत्ते रोटी के कुछ टुकड़ों के लिये दिन भर घूमते रहते हैं। कुछ मवेशियों को भर पेट भूंसा खिलाया जाता है। उनके स्वामी उनको पर्याप्त मात्रा में जल और खली खिलाते हैं और उनकी अच्छी देख भाल करते हैं। कुछ मवेशी भूके पेट दिन भर घूमते रहते हैं। उनको तो कुछ घास भी खाने को नहीं मिलते और उन्हें गंदगी में चरना पड़ता है।

इन पृथकताओं का मुख्य कारण प्रारब्ध कर्म है। कोई भी इन्हें पूर्णत: बिना भोगे मुक्त नहीं हो सकता। यही सम्पन्नों की सम्पन्नता का कारण है और यही दरिद्रों की दरिद्रता का। कोई भी इस विधान के लिखी गई विधि के सम्पूर्णत: भुगतने से बच नहीं सकता। जो विधान पशुओं पर लागू होता है वही मनुष्यों पर भी होता है। एक अमीर है तो दूसरा ग़रीब, एक खुशाल है तो दूसरा ग़रीबी के जाल में फंसा हुआ है। एक अनाथ है जिसे भीक मांगना पड़ता है। दूसरा ऐसे चलता फिरता है जैसे घोड़े पर सवार राज कुमार हो। एक राजप्रासाद के विलासिताओं को भोगता है। दूसरे के पास अपना कहने को कुच भी नहीं और ज़मीन पर नग्न सोता है और जिसका छत आसमान होता है। किसी को संतान प्राप्त है। किसी के यहाँ संतान प्राप्ति के पश्चात सभी संतानों की मृत्यु हो जाती है। कुछ महिलायें बांझ होती हैं और उन्हें संतान प्राप्त नहीं होते। कुछ महिलाओं को संतान प्राप्ति के लिये अत्यंत कष्ट झेलना पड़ता है।" बाबा के इस कथन के कहते समय नाना ने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर पूछा, "बाबा, फिर क्यों हमें सुख और दुख की अनुभूति होती है? सुख से हमें आनंद प्राप्त होता है और दुख से ग्लानि। सांसारिक जीवन में फंसे हुए व्यक्ति को हर पल इन दो चरम सीमाओं के बीच मंडराना पड़ता है। यदि यह संसार सुख और

दुख का भंडार है, तो कैसे उसे छोड़े बिना दुख का संघार हो सकता है और कैसे सुख की प्राप्ति हो सकती है?"

बाबा बोले, "सुख और दुख भ्रम हैं। वे ऐसे धुंद हैं जो वास्तव को छिपाते हैं। हम जिस सांसरिक सुख को सुख समझते हैं वह वास्तव में सुख नहीं है। इसे और निकट से परीक्षण करो। कई लोग इस पहलू को समझने में त्रुटि करते हैं। यह प्रारब्ध कर्म का फल है कि किसी को खाने के लिये स्वादिष्ट भोजन मिलता है और किसी को सूखी रोटी। जिसको बांसी रोटी मिलता है वह दुख में डूब सकता है। दूसरे को खाने में केवल रोटी की सूखी पपड़ियाँ मिल सकती हैं। जिसको स्वादिष्ट भोजन मिलता है वह सोचता है उसके पास सब कुछ है और उसे कोई कमी नहीं है। कोई स्वादिष्ट भोजन कर सकता है और कोई केवल चावल के साथ अचार खा सकता है। वह केवल भूक को तृप्त करने और पेट भरने का कार्य है। कई लोग अपने आप को कढ़ाई किया हुआ महंगे शाल से ढकते हैं। और कई अपने तन को गुदड़ियों से। वह महंगा शाल या गुदड़ी हो सकते हैं परंतु उद्येश्य है शरीर को ढकना। इस मूलभूत उद्येश्य के अतिरिक्त और कोई भी उद्येश्य की पूर्ती नहीं होती।

सांसारिक सुख और दुख को महत्व देना अज्ञान का फल है। यदि मन की, सागर से तुलना की जाए तो सुख और दुख उसकी लहरों के उतार चढ़ाव जैसे है। जिसे तुम सुख और दुख मानते हो वे वास्तव नहीं हैं। वे केवल शरीर के प्रति आसक्ती के कारण उत्पादित भ्रांति हैं। यहाँ तुम्हें शंका हो सकती है। लहरें तभी उत्पन्न होती हैं जब जल का अस्तित्व हो। रोशनी तभी होती है जब दीये होते हैं। अतयेव सुख और दुख जैसे धारणाओं की उत्पत्ती का मूल कारण भी होना चाहिये। वे क्या हैं? वे छः शत्रु हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्षा जो कि आधार हैं इस संसार में सुख

और दुख की उत्पत्ति का। इनके लहरों का होना एक भ्रांति ही है। इनसे सत्य मिथ्या प्रतीत होता है और मिथ्या सत्य। जब एक गरीब आदमी किसी अमीर के हाथ में सोना देखता है तब उसे ईर्षा होती है। तब ईर्षा के तरंग उसके मन में उत्पन्न होते हैं। उसे यह लगता है कि 'वह सोना मेरे हथों में होना चाहिये था'। जैसे उसे ऐसा प्रतीत होता है तभी एक और तरंग लोभ की उत्पत्ति है। नाना कितने इसके और उदाहरण मैं तुम्हें प्रस्तुत करूँ? सबसे पहले हमें छः शत्रुओं को जीतना है। उन्हें एक बार वश में करने के पश्चात वे हमारे मन में किसी भी तरंग की उत्पत्ति नहीं कर सकते हैं। यदि सत्य जानना है तो हम इन छः शत्रुओं को सम्पूर्णत: जीत नहीं सकते परंतु उन्हें अपना दास बना सकते हैं। हमारे ज्ञान को इन शत्रुओं के अधिक्षक बनाकर इनको हमें वश में रखना चाहिये। ज्ञान के ऊपर विवेक को पर्यवेक्षक स्थापित करना चाहिये। यदि इसे हम अर्जित कर लें तो आगे सुख और दुख की व्यथा हमें नहीं सतायेगी।

अच्छा अब मैं तुम्हें वास्तविक सुख और दुख के बारे में बताऊंगा। मुक्ति (मोक्ष या निर्वाण) ही वास्तविक सुख है। जन्म लेना और मृत्यु प्राप्त करना वास्तविक दुख है। इनके सिवाय कोई भी सुख या दुख, केवल भ्रम है। अब मैं तुम्हें इस संसार में जीने की प्रणाली बताऊंगा। मुझे सावधानी से ध्यानपूर्वक सुनो। प्रारब्ध कर्म के फल, जो हमारे भाग्य में हैं उन्हें हम आनंद सहित कैसे भोग कर सकेंगे।

हमे उनसे ईर्षा नहीं करनी चाहिये जो (प्रारब्ध के फलस्वरूप) हमसे बेहतर स्थिति में हों और न ही उनके धन से लालायित होना चाहिये। जैसे कि अधिक फलों से लदे हुए वृक्ष झुका हुआ होता है ठीक उसी तरह धनी व्यक्ति को भी विनम्रता से झुका हुआ रहना चाहिये। पर दुष्टों के साथ कभी भी विनम्रता कार्यान्वित नहीं होती। क्योंकि यह डर रहता है कि दुष्ट

धनी की विनम्रता का दुस्प्रयोग करेगा। दुष्टों के साथ निर्मम होना पड़ता है। धनी को साधुओं और अच्छे लोगों के साथ विनम्र होना चाहिये। धनी व्यक्ति सुलघते हुए दोहपहर की धूप से अपनी छाया से आश्रय देने वाले वृक्ष जैसे होते हैं। धनी व्यक्तियों को अपने धन से मदमत्त हो किसी को क्षति नहीं पहुंचानी चाहिये। उन्हें भीक्षा और दान अपनी अवस्था के अनुसार देना चाहिये। उन्हें उधार नहीं लेना चाहिये और न ही अनावश्यक खर्च करना चाहिये। यह सही है कि यह संसार एक माया है परंतु प्रारब्ध वास्तव है। इस जीवन की यात्रा में धन आवश्यक है। जैसे पित्ताशय जीवन के लिये आवश्यक है इस संसार के लिये धन आवश्यक है। किसी को धन अर्जित करने हेतु सर्वस्व रूप से लिप्त नहीं रहना चाहिये। किसी को कृपण भी नहीं होना चाहिये और समय समय पर खुले रूप से दान देना चाहिये। अधिक मात्रा में दान भी भयानक होता है। यदि हमारे कठिन परिश्रम से अर्जित किया हुआ धन खर्च होने के पश्चात शेष हो जाये तो हमारी सहायता हेतु कोई भी नहीं आयेगा। यदि कोई मनुष्य अत्यंत दानी व खर्चीला हो तो अपशकुन व आपदा ग्रस्त हो सकता है। उसकी विशेषताओं व उसकी योग्यताओं का अनुमान लगाना आवश्यक है जिसे दान दे रहे हैं। अपाहिजों को, बीमारों को, अनाथों को तथा जहां जनसाधारण के उपयोग में आये ऐसे स्थानों पर उदारता सहित दान देना चाहिये। अध्ययन करने वाले छात्रों को एवं प्रसूति होने वाली स्त्रीयों, जिनका देख भाल करने वाला कोई न हो उनका भी खर्च उठाने के लिये तत्पर रहना चाहिये। अन्नदानम (लोगों को भोजन कराना) तीन प्रकार के होते हैं - विशेष कारणम (किसी विशेष कारण हेतु), नित्य कारणम (प्रति दिवस) और कार्य कारणम (किसी उपलक्ष पर)। यदि किसी को उसके प्रतिकूल परिस्थितियाँ

प्राप्त हो तो उसे विशेष अन्नदानम कराना चाहिये। सहस्र लोगों का भोजन भी कराया जा सकता है।

जब अन्नदानम कर रहे होते हैं तब कौन बड़ा, कौन छोटा, कौन भला और कौन बुरा यह नहीं देखना चाहिये। अन्नदानम के पात्र सभी हैं। धरमशालाओं में भी अन्नदानम करना चाहिये। परंतु कभी भी उधार लेकर अन्नदानम नहीं करना चाहिये। अब मैं तुम्हे कौन नित्य अन्नदानम के पात्र हैं वह बताऊंगा। पथिक, तपस्वी, सन्यासी और भूके सभी नित्य अन्नदानम के पात्र हैं। जो पके हुए चावल को ग्रहण नहीं करते, जो छात्र हैं और जो सप्ताह के हर दिवस भिन्न ग्रहस्त के यहाँ भोजन करते हैं वे भी नित्य अन्नदानम के पात्र हैं। कार्य अन्नदानम तब किया जाता है जब किसी के यहाँ विवाह हो, या उपनयन हो या अन्य कोई उत्सवयुक्त अनुष्ठान हो। ऐसे क्षण में, मित्रों, शुभ चिंतकों, सम्बंधियों तथा स्वगोत्र के लोगों को उदारतापूर्वक खिलाना चाहिये। अभी मैंने तुम्हे भिन्न प्रकार के अन्नदानम और कौन उनके उपयुक्त हैं उसके बारे में बताया। वस्त्र दान के नियम भी समान हैं। इन नियमों को नहीं भूलना। हर किसी का प्रयास दूसरों के दुखों से उन्हें उद्धार करना होना चाहिये। किसी को भी अपने सत्ता या धन का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। जब कोई न्याय करने के आसन पर बैठा हो तब उसे घूस लेकर अन्याय नहीं करना चाहिये। हर कार्य को उत्कृष्टता से करना चाहिये। किसी को भी दिखावटी साज सज्ज नहीं करना चाहिये बल्कि उतना ही करना चाहिये जितना शीलता की मांग हो। किसी को बनावटी सजावट या अतिरिक्त साज सज्जा से अपने आप को सज्जित करना नहीं चाहिये। किसी का अपमान न करो। दुष्ट को पहचानो, उनका स्मरण रखो और उनसे सावधान रहो। पत्नी, संतान और नौकर सब प्रारब्ध के कारण प्राप्त हुए हैं। उनके साथ विनम्रता तथा प्रेम का बर्ताव करो।

एक क्षण के लिये भी यह मत समझ लेना कि वे आपकी संपत्ती हैं। ऐसा करने से और अधिक माया में फंसना पड़ता है जिससे और अधिक प्रारब्ध कर्म एवं और अधिक जन्म और मृत्यु की शृंखला का बढ़ना अनिवार्य हो जाता है। हमे इसी जीवन में प्रारब्ध को अनुभव कर भोग लेने की चेष्टा कर उसे समाप्त कर देना चाहिये। हमारी मृत्यु के समय कुछ शेष ले जाना नहीं चाहिये। हमे जो कुछ प्राप्त होता है वह प्रारब्ध के कारण होता है।

मित्रगण, संबंधी, पत्नी और संतान सब इसी जीवन पर्यंत सीमित हैं। प्रत्येक व्यक्ति और उसका तुमसे संबंध केवल इसी जीवन तक सीमित है। तुम्हारे अगले जन्म में कौन तुम्हारे साथ उलझेगा यह तुम्हें क्या मालूम? यह हमारी वासनायें हैं जो हमें उलझाए रखती हैं और हमें मुक्त नहीं होने देतीं।

यह वासनायें ही हैं जो हमारे पुनर्जन्म के बीज बोते हैं। इसी लिये जो अपने कर्म के सहित आसक्त नहीं हो जाते, वे ही तदपश्चात अनगिनत लाभ प्राप्त करते हैं। एक आद दिन किसी सराय में रहकर उससे आसक्त हुए बिना अपने गंतव्य स्थान की ओर चल पड़ना होता है। ठीक उसी तरह हर किसी को इस संसार को सराय के रूप में देखना है और किसी से आसक्त नहीं होना है। इसी तरह उसे अपना धर्म निभाना है और उस सर्वशक्तिमान जो कि सत्चिदानंद (अस्तित्व, ज्ञान और परमानंद) की प्रतिमूर्ती हैं उनको पहचान कर उनके प्रति श्रद्धा अर्पित करना है। वे ही हैं जो किसी के पुत्र या अन्य किसी के पुत्र को जन्म देने के कर्ता हैं। परंतु उस पुत्र का पालन पोषण करना उसके स्वयं का दायित्व है। यह आवश्यक है कि धन अर्जित करें और उसका संचय कर अपनों के पोषण के लिये व्यवहार करें। किंतु कभी भी यह सोच आनी नहीं चाहिये कि, 'मैं

धन संचित कर रहा हूँ, मैं उनके लिये यह धन रख रहा हूँ, मैं उनकी देख भाल कर रहा हूँ।' हर किसी को इस भावना के साथ अपना कर्म करना चाहिये कि कर्ता एवम फल देने वाले ईश्वर हैं और वह इनसे अछूता रहे। कौनसा अच्छा और कौनसा बुरा है उसका परीक्षण करने में अपने ज्ञान का व्यवहार करना चाहिये। अच्छे को अपनाना और बुरे को त्यागना चाहिये। अच्छे कार्यों को करना चाहिये और उन्हें दृढ़ संकल्प से सम्पूर्ण करना चाहिये। इस तरह जीवन यापन करना चाहिये ताकि मृत्यु के पश्चात भी सुख्याति इस संसार में रह जाये। कार्य को इस तरह से नहीं करना चाहिये जैसे कि वह स्वयं ही कर्ता हो। यह पुरुषार्थ है। इसके बारे में तुम्हें और कितना बताऊँ? अहं का यह अनुभव कि मैं ही कर्ता हूँ, ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिये। जब किसी को उसके कार्य के लिये पुरस्कार मिलता है तब उसे विनम्र रहना चाहिये। जब तक जीवित हैं अपने शरीर का खयाल रखना चाहिये। पर मृत्यु के बारे में सोचना या चिंता करना निरर्थक और समय नष्ट करना है। यह शरीर हमें पंचभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा मिट्टी) से उधार मिला है। जैसे ही प्राण शरीर से निकलते हैं ये पंचभूत में विलीन हो जाते हैं। वायु से वायु से मिल जाता है। ऊर्जा, ऊर्जा से। पंचभूत वहीं चले जाते हैं जहाँ से वे आये थे।

शरीर पृथ्वी का अंग है। उसके मृत्यु के पश्चात उसके लिये विलाप करना निरर्थक है। उसी तरह से उसके जन्म होने पर भी उल्हासित होना निरर्थक है। यह सोचकर संतुष्ट रहना चाहिये कि यह प्रकृति का नियम है। पृथ्वी (मिट्टी) बीज का संरक्षण करती है। मेघ जल की वृष्टि करते हैं। सूर्य की किरणों से पौधों का जन्म होता है। क्या मिट्टी, जल और धूप पौधों के प्रस्फुटित होने पर खुशी से नाच उठते हैं? चाहे वह पौधा विशाल वृक्ष बने या अंकुर रहते ही मर जाये, न तो प्रूथ्वी, न तो मेघ और न ही धूप अपनी

खुशी या दुख व्यक्त करते हैं। ठीक उसी तरह ज्ञानी व्यक्ति इन सुख और दुख से परे हैं। हमें भी ऐसे ही होना चाहिये। सुख और दुख के लिये तब जगह कहाँ बचती है? हे चाँदोरकर परिवार के वंशज! सुख और दुख के समय तटस्थता तभी संभव है जब इनसे मुक्ति हो जाये। बाक़ी कहानी बाद में सुनाऊंगा। अब तुम अपना कर्तव्यओं को जारी रखो।"

बाबा के होठों से मोती जैसे झरते हुए ज्ञान के शब्द नानासाहेब चाँदोरकर ने सुना। वे साष्टांग दंडवत हुए और उनके चरणों को ऐसे आलिंगन किया जैसे कोई बच्चा अपनी माँ को करता है। उनकी आँखों में अश्रु और उनके रोंगटे खड़े, वे भक्ति भाव के आवेग से भरपूर थे। उन्होंने कहा, "हे सिद्ध पुरुष! आपने मुझे बचा लिया। आपने अपनी शिक्षा की वृष्टि से मेरे अज्ञान के धूल को संपूर्णत: मिटा दिया। मैं आपके इस उपकार को कैसे भूल सकता हूँ?" नानासाहेब निमोनकर भी साथ थे और बाबा की इस शिक्षा के परमानंद में डूब गये थे। उन दोनो ने बाबा को प्रणाम किया और घर लौट गये।

वे भक्त जो इन वाक्यों को नित्य श्रद्धा और भक्ति सहित पढ़ेंगे उन्हें संसार के दुख नहीं सतायेंगे। 'भक्त लीलामृत' में दी गई शिक्षा वस्तुत: सदगुरु की दी गयी शिक्षा की वृष्टि है। यह दास गणु की कामना है कि आप इस वृष्टि में भीगकर उसका पूरा लाभ उठायें।

यहाँ दास गणु महाराज की लिखी गयी 'भक्त लीलामृत' का ३२वां अध्याय समाप्त होता है।

टिप्पणियाँ और उद्धरण

क्या बाबा ने इस तरह शिक्षा प्रदान किया? दास गणु महाराज द्वारा लिखे गये 'भक्त लीलामृत' के ३२वें और ३३वें अध्यायों को पढ़कर हर पाठक के

मन में यह शंका आना स्वभाविक है कि क्या बाबा ने कभी इतनी लंबी लंबी भाष्य रखे होंगे। बाबा ने कभी आध्यात्म पर भाषण दिये ही नहीं। आध्यात्म के अलौकिक सत्य को वे प्रसंग का लाभ उठाते हुए छोटे छोटे वाक्यों अथवा शब्दों में व्यक्त करते थे। उनकी कुछ शिक्षायें तो सूक्तियों के रूप में उपलब्ध हैं। इन अध्यायों में जिस शैली में आध्यात्म सत्यों का विवरण किया गया है उस तरह से बाबा ने कभी नहीं व्यक्त किया होगा। तब इन अध्यायों में जो शिक्षायें दी गई हैं उनकी क्या गंभीरता है? दास गणु ने एक अन्य अवसर पर इसका स्पष्टीकरण दिया है।
"जो शिक्षण मैंने बाबा का नाना साहेब चाँदोरकर को संबोधित करते हुए दर्शाया है, वे शब्दश: लिप्यंतरण नहीं हैं। नाना ने बाबा के दिये हुए कुछ आध्यात्मिक सत्यों का व्याख्यान मुझे बताया था। मैंने अपनी कल्पना का उपयोग कर इन तथ्यों का विस्तारित व्याख्या और अर्थप्रतिपादन किया है। बाबा ने केवल मूल सार ही सिखाया था।"
अतयेव यह स्पष्ट होता है कि दास गणु के पुस्तकों में या उत्तर काल के इतिहासों में जो बाबा के मुख से निकले लंबे लंबे अनुच्छेद हैं वे वस्तुत: शब्दश: बाबा के मुख से निकले शिक्षण नहीं हैं।

कर्म के विषय में - □ गे का क्रम

सब श्री गणेश की जयजयकार करें! श्री गणेश! आप त्रिगुणों से परे हैं। आप त्रिगुणों के अवतार भी हैं! आप ही से संसार के सभी कोनें भरे हुए हैं! आप इस संसार के घेरे से असीमित भी हैं! आप सत-चित-आनंद के अवतार हैं! सभी कार्यों के शुभारंभ आप हैं! आप ध्वनि के निर्माता भी हैं तथा स्वयं ध्वनि के मूर्त रूप भी! हे सक्षम! आप ही हैं जो बोलते हैं और

हमसे बुलवाते भी हैं! आपकी कृपा के बिना यदि कुछ बोलना भी चाहूँ तो मैं मूक बन जाता हूँ। सभी कल्याण के आप मूर्त रूप हैं! आप ही कल्याण के रचयिता हैं! जब मैं आपके गोद में हूँ तो मेरा कौनसा अशुभ हो सकता है? अशुभ के विषय में चर्चा भी अनुचित होगा।

नाना साहेब चाँदोरकर कुछ दिनों पश्चात, बाबा के दर्शनार्थ फिर एक बार शिरडी आये। उन्होंने उनको साष्टांग प्रणाम किया और उनके चरणों का आलिंगन किया। उन्होंने कहा," मुझे वह सिखाईये जो पिछली बार जब मैं आया था, आपने सिखाने का वायदा किया था।" बाबा, नाना के सीखने की उत्कंठा पर हर्षित हुए। वे बोले," मेरी बातों को ध्यान से सुनो। खुशी और दुख से निर्मित माया के संघार को मुक्ति कहते हैं। उस मुक्ति की स्थिति को प्राप्त करने हेतु, जो मैं सीख दे रहा हूँ उसका पालन करो। जब प्रारब्ध से आक्रांत की अवस्था हो, तब सचेत रहकर उचित सोच द्‌वारा उसके गुणों के बारे में जानना आवश्यक है। इस सतर्कता को कभी भी ढील नहीं देनी चाहिये। जो कुछ भी हमारे साथ हमारी साधारण अवस्था में होता है वह प्रारब्ध के कारण होता है। जो हमारे कर्मों के फलस्वरूप होता है वह प्रारब्ध के कारण नहीं होता है। उदाहरणत: कुछ लोग चोरी करते हैं। वे पकड़े जाते हैं और उन्हें दण्ड मिलता है। वह दण्ड कर्म के फल से मिलता है न कि प्रारब्ध के। किसी की विष ग्रहण करने पर मृत्यु हो जाती है। यह कर्मफल है। नौकर अपने मालिक के पैसों का धोकादारी से हरण कर धनी हो जाता है। यह भी कर्मफल है। जैसे जैसे नौकर धनी होता चला जाता है, वैसे वैसे वह कोठी क्रय करता है, गाड़ी और घोड़े ख़रीदता है और सोचता है कि वह खुश है। परंतु उसका अपने मालिक के साथ धोका करना निरंतर उसका पीछा करता रहता है।

इसे संचित कर्म कहते हैं जिन्हें अगले जनम में भोगने पड़ते हैं। जब संचित कर्म हो तो पुनर्जन्म अपरिहार्य है। ज्ञानी इसे समझते हैं इस लिये वे उनके व्यवहार को उसी ढांचे में ढालते हैं। मूढ़ इस के बारे में नहीं जानते और इस लिये इसकी परवाह नहीं करते। अपने प्रारब्ध के अनुसार उसको इस जीवन में नौकर की भूमिका प्राप्त हुई। और यही उसके अगले जीवन का कारण बनेगा। यदि हम पूछें कि उसकी इस जीवन की प्राप्ति क्या है तो उसका उत्तर होगा कि उसने अगले जीवन की नीव डाली है और बीज बोया है। जन्म और मृत्यु के इस निरंतर फेरे से कैसे मुक्ति मिल सकती है? कुछ को ऊच्य पद प्राप्त होते हैं और वे अन्यों पर हावी होते हैं। कुछ पूरे संसार में घूमकर आध्यात्म के सत्य को बांटते हैं। कुछ योगी बनते हैं। कुछ व्यापारी बन दुकान खोलते हैं। कुछ अध्यापक बनते हैं और बच्चों को पाठशाला में पढ़ाते हैं। क्या मुझे बता सकते हो कि उन्हें यह पद कैसे प्राप्त हुए? यह सब प्रारब्ध के फल हैं। ऐसा कर्म के कारण नहीं हुआ है।"

चाँदोरकर असमंजस में पड़ गये। उन्होंने कहा, "बाबा आपने कहा कि जिस व्यक्ति ने चोरी की वह चोर बन जाता है। आप कहते हैं यह कर्म का फल है। आप यह भी कहते हैं कि शेष प्रारब्ध का फल है। मैं आपको समझने में असमर्थ हूँ। क्या आप इन दोनो की पृथकता पर और थोड़ी सी व्याख्या करेंगे?"

बाबा ने जो कि दया के अवतार हैं, उनके प्रिय नाना के प्रश्न को सुना। बाबा ने किस तरह उन्हें उत्तर दिया अब ध्यानपूर्वक सुनिये। बाबा बोले, "नारयण! अपनी बुद्धि को नियंत्रण में रख कर भटकने से रोक कर सोचो। कुछ चोरी करते हैं और चालाकी कर न्याय से बच जाते हैं। कुछ को दोषी निर्णित किया जाता है और कारागार में बंदी बना लिया जाता है। कुछ

बचकर ऐसे घूमते हैं जैसे वे भद्र समाज के समर्थ लोग हों। तुम मुझे यह बताओ कि इसमें कर्म का फल कहाँ है? यह प्रारब्ध का फल है। दोनों ने चोरी की है। एक पकड़ा जाता है और कारागार में बंदी बना लिया जाता है और दूसरा बच निकलता है। प्रारब्ध कर्म से ऊपर है। जिस चोर को बंदी नहीं बनाया गया उसकी पूर्णत: मुक्ति नहीं हो पायी है। उसके कर्म उसे अगला जनम लेने पर बाध्य करेंगे। इसी लिये मैं कहता हूँ कि प्रारब्ध को भोगते समय धर्म के तोपों (निर्देशों) का पालन करना चाहिये। इसका यह मतलब है कि तब अच्छों का साथ ढूंडना चाहिये और उन्ही के संग समय बिताना चाहिये। समाज में बुरों के, दुष्टों के और नास्तिकों के साये से भी दूर रहना चाहिये। निषिद्ध वस्तुओं का भोजन नहीं करना चाहिये। बहस और प्रतिद्वंद के लिये कोई जगह नहीं होनी चाहिये। सत्य को हमेशा अपनाओ। भगवान आपके प्रति खुश रहेंगे। किसी को यदि कोई वायदा किया हो तो उसको निभाओ। जो वचन देते हैं और उससे पीछे हट जाते हैं उनसे भगवान भी दूर चले जाते हैं।

नारायण, जब कामुक भाव तुम्हें सता रही हो, तब उसकी पूर्ती के लिये केवल पत्नी से ही संबंध बनाना। सुंदर स्त्रीयों को देख कभी मन में भी वासना उत्पन्न न करना। अपनी पत्नी के सहित भी अत्याधिक कामुक नहीं बनना। अत्यंत कामुक मत बनो। जो कामुक भाव के चांचल्य के दास हैं, उन्हें मोक्ष प्राप्त नहीं होता है। यह काम का चांचल्य बहुत बलशाली है। यह मन को शांत नहीं रहने देता है। हमारे छः शत्रुओं में सबसे बलशाली यही है। परिच्छेद तथा विवेक से इसे आधीन कर इसको वश में रखो। हमे उसका दास बनना नहीं चाहिये। जो इस तरह अपने आचार को नियंत्रण में रखते हैं वही प्रज्ञ हैं।

जब कोई प्रारब्ध के फलों को भोग रहा हो तब उसे मोक्ष प्राप्ति के लिये उन छः शत्रुओं का परिमित मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। उसे हर समय परमेश्वर का नाम जपना चाहिये। पापयुक्त कर्मों की सोच की ओर अपने मन को भटकने से रोक लेना चाहिये। मोक्ष प्राप्ति एवं जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्ति के लिये उसे व्याकुल होना चाहिये। पापों के पश्चात्ताप करना तथा पाप युक्त जीवन से मुँह मोड़ लेना चाहिये एवं मन की दिशा को आध्यात्म की ओर मोड़कर परमेश्वर को अपनाना चाहिये। अहंकार के लिये कोई जगह नहीं होनी चाहिये। साधु संतों के विषय में लिखे गये व्याख्याएँ पढ़नी चाहिये। जो ज्ञानी हैं उनके प्रति श्रद्धा और उनका देख भाल निर्मल मन से करना चाहिये। अपने माता-पिता के प्रति उनकी प्राप्य श्रद्धा अर्पण करनी चाहिये तथा उनकी अच्छी देख भाल करनी चाहिये। अपनी माँ की श्रद्धा सहस्र तीर्थ यात्रा से अधिक और पिता को ईश्वर समान श्रद्धा करना चाहिये। ऐसे लोग सभी के श्रद्धा के पात्र हैं। अपने भाई और बहनों से प्रेम करना चाहिये और सब से निशपक्ष व्यवहार रखना चाहिये। अपनी पत्नी से भी प्रेम करना चाहिये पर उसके वश में नहीं रहना चाहिये। व्यावहारिक द्रूष्टिकोण से घर बार चलाने के लिये उसका परामर्श लेना चाहिये। अपने पुत्र और पुत्रवधु के बीच कोई भेद भाव नहीं रखना चाहिये। जब वे अकेले हों तब उनकी ओट पर अतिक्रमण न करें। अपने बच्चों के साथ उधम न मचायें और न ही परिहास करें। इन क्रियाओं को अपने मित्रों तक सीमित रखें। अपने नौकरों के साथ समानता न व्यक्त करें। दहेज न लें न दें।

अपनी पुत्री का विवाह किसी वृद्ध के साथ उसके धन या प्रतिष्ठा के प्रलोभन में न करें। दामाद पुत्री के उपयुक्त होना चाहिये। यह पुरोषों का धर्म है। जो इन्हें जानता हो और इनके अनुसार जीवन बिताता हो वह इस

संसार की माया में नहीं उलझेगा। स्त्री का लाजवंती और विनम्र होना आवश्यक है। उसे अपने शरीर का लज्जाहीन प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। उसके घर के लोगों की अनुपस्थिति में अकेले किसी आगन्तुक से वार्तालाप नहीं करना चाहिये। यदि वह आगन्तुक उसका भाई ही क्यों न हो, उसे उसके साथ अकेले में बात नहीं करनी चाहिये। घर में स्त्री की स्थिति बहुत नाज़ुक होती है।

जैसे कि बकरी, सियाड़ के लिये भक्षण का पदार्थ है उसी तरह स्त्री भी पापियों के लिये भक्षण का पदार्थ है। ठीक जिस तरह हम बकरी को, बाड़ बनाकर उसको हानि से बचाते हैं, उसी तरह स्त्रीयों को भी प्रतिबंधित कर उनके बचाव और देख रेख के लिये सदैव सतर्क रहना चाहिये। अत: हे नाना! स्त्रीयों के साथ किये गये आचरण का सदा ध्यान रखना। स्त्रीयों के लिये बच्चों को अच्छी सीख देना आवश्यक है। उन्हें शिष्टाचार और आचरण के संस्कार कहानियों के माध्यम से सिखाना चाहिये और उनकी देख भाल करनी चाहिये। बच्चों के लिये केवल वही उचित प्रशिक्षण है जो उन्हें नेक बनाये। किसी भी स्त्री को उसकी सास अथवा उसके ससुर या उसके पति के घर के अन्य कोई संबंधी से द्वेश भाव नहीं रखना चाहिये। उसके पति की दूसरी पत्नियाँ हो तो उनसे प्रेम भाव रखना चाहिये। उसे शुद्धता और सही आचरण का आदर्श उदाहरण बनना चहिये।

मैने अभी पुरुषों एवम स्त्रीओं द्वारा क्या उचित आचरण करना चाहिये वह बताया। इन्हें अपनाने के पश्चात पुरुष और स्त्री दोनो माया के बंधन से मुक्त होंगे।

अब मैं तुम्हें माया से द्रवित व्यक्तियों की विशेषतायें बताऊंगा। मुझे ध्यानपूर्वक सुनो। जिसे क्या ग़लत आचरण है और क्या सही आचरण है यह नहीं मालूम, जो ईश्वर की भक्ति नहीं करता है और जो अपने हृदय

में सही भावनाओं को स्थान नहीं देता है वह माया में फंसा या बंधा हुआ है। जो पाप करता है, जो चालाकी करता है और जो कठोर शब्दों का प्रयोग कर पाप करता है वह माया में बंधा हुआ है। जो संतों की अवहेलना करते हुए केवल सांसारिक जीवन में उलझे रहते हैं वे भी बंधन में द्रवित हैं। जो धनी हैं और दान नहीं करते हैं अथवा जो छोटी छोटी बातों पर बहस या युक्तिहीन तर्क करते हैं वे भी बंधित हैं। जो दूसरों के धन का व्यय करता हो और जो संतों तथा अच्छे लोगों का ध्यान नहीं रखता हो वे भी फंसे हुए हैं।

कुछ लोग दूसरों की बदनामी कर अपना सुनाम बढ़ाना चाहते हैं। वे ऐसे आचरण दिखाते हैं जैसे वे अच्छे व नेक व्यक्ति हों परंतु वे वस्तुत: पाप के सहभागी हैं। यह सांसारिक जीवन ही उनका ध्येय है। उनके लिये यह संसार ही भगवान है। उनके कार्य का केंद्र केवल यह संसार है। ये सब भी बंधित हैं। जो अपने मित्रों से घृणा करता हो या गुरु से शत्रुता करता हो तथा गुरु के शब्दों पर विश्वास न करता हो वह भी फंसा हुआ है। जो अनेक अच्छी पुस्तकों को पढ़कर भी अपने मन को शुद्ध नहीं कर पाता है वह भी बंधा हुआ है। जो बंधे हुए हैं वे धर्मात्माओं का साथ और अपनी अंतिम घड़ी को नहीं निभा सकते हैं। उन्हें दुख का सामना करना पड़ता है और मृत्यु पश्चात नरक को जाना पड़ता है।

अब मैं तुम्हें मुमुक्षु (सत्य को प्राप्त करने की चेष्टा करने वाला) के गुण बताता हूँ। मुझे सावधानी से सुनो। जो अपनी फंसे रहने की स्थिति से विरक्त हो चुका हो, जो अपने दुशकर्मो को सर्वदा उचित चिंता से मिटाने को उत्सुक हो और जो इस आतुरता की अग्नि में जलता हो तथा ईश्वर के दर्शन के लिये कठिन परिश्रम करता हो वह मुमुक्षु है। जो धर्मात्माओं का संगत चाहता हो या सत्संग में रहना पसंद करता हो और इस संसार

से इस लिये घृणा करता हो कि उसका अस्तित्व नगण्य है, वह मुमुक्षु है। जो यह जानकर जीवन बिताता है कि जो कुछ प्राप्त हो रहा है वह प्रारब्ध ही है और उसे कोई असंतोष नहीं होता, वह मुमुक्षु है। यह जान लो कि जो व्यक्ति पाप करने से डरता है और सदा सत्य बोलता है वह मुमुक्षु है। यदि कोई इनसान गिरा हुआ भी हो और वह अपने किये का पश्चात्ताप करता है, तो वह मुमुक्षु है। वह जो ईश्वर में विश्वास रखता है और साधुओं के प्रति श्रद्धा और विनम्रता व्यक्त करता है तथा जो उचित व्यवहार का आदर करता है एवम उसे कार्यरूप में परिणत करता है, वह मुमुक्षु है।

जो क्षण भर भी धर्मात्माओं और पवित्र व्यक्तियों के साथ का त्याग न करना चाहता हो और सर्वदा ईश्वर के नाम का बारंबार उच्चारण करना चाहता हो, वह साधक है। वह जो सांसारिक वस्तुओं को विष के समान समझता हो और सदा आध्यात्म के बारे में जानना चाहता हो वह साधक है। यह जानो कि वह साधक के स्तर पर है, जो हमेशा ईश्वर की साधना में व्याप्त रहता है और एकांत में रहता है। जिनके कण्ठ ईश्वर का नाम और उनके गुणों का व्याख्यान सुनते ही रुंध जाते हों और ऐसे क्षण में जिनके शब्द अस्पष्ट हो जाते हों वह साधक है। जो संसार को भूलकर संतों की सेवा में लगे रहता हो एवम ईश्वर की हमेशा ध्यान करता हो वह साधक है।

जो प्रशंसा और तिरस्कार को समभाव से देखता है, जो हर व्यक्ति और ईश्वर में पृथकता नहीं देख पाता है और जो ख्याति और निंदा को समानता से देखता है, वह सिद्‌ध है - जिसकी सम्पूर्ण प्राप्ति हो चुकी है। वह जो छः घातक शत्रुओं यानी, काम, क्रोध, लोभ, भ्रम, अहंकार और ईर्षा के वार से निमित्त भी प्रभावित न हो, वह सिद्‌ध है। उसे सिद्‌ध जानो जो इच्छा तथा शंका के लिये कोई स्थान न रखता हो और जो मेरे और तुम्हारे बीच

कोई भी अंतर नहीं देख पाता हो। वह जो जानता हो कि यह शरीर नश्वर है और वह ही ब्रह्म है, वह जो सुख और दुख को समभाव से ग्रहण करता हो, वह ही सिद्ध है। उपरोक्त चार अवस्थाओं के बारे में सावधानी से सोचो और उनको परखो। इस विश्व में ईश्वर सर्वत्र हैं। ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहाँ वे नहीं हैं। परंतु उनकी दिव्य माया और भ्रांति हमें भ्रमित करती हैं। ईश्वर को जानने की इच्छा और उनकी प्राप्ति को माया दमन करती है।"

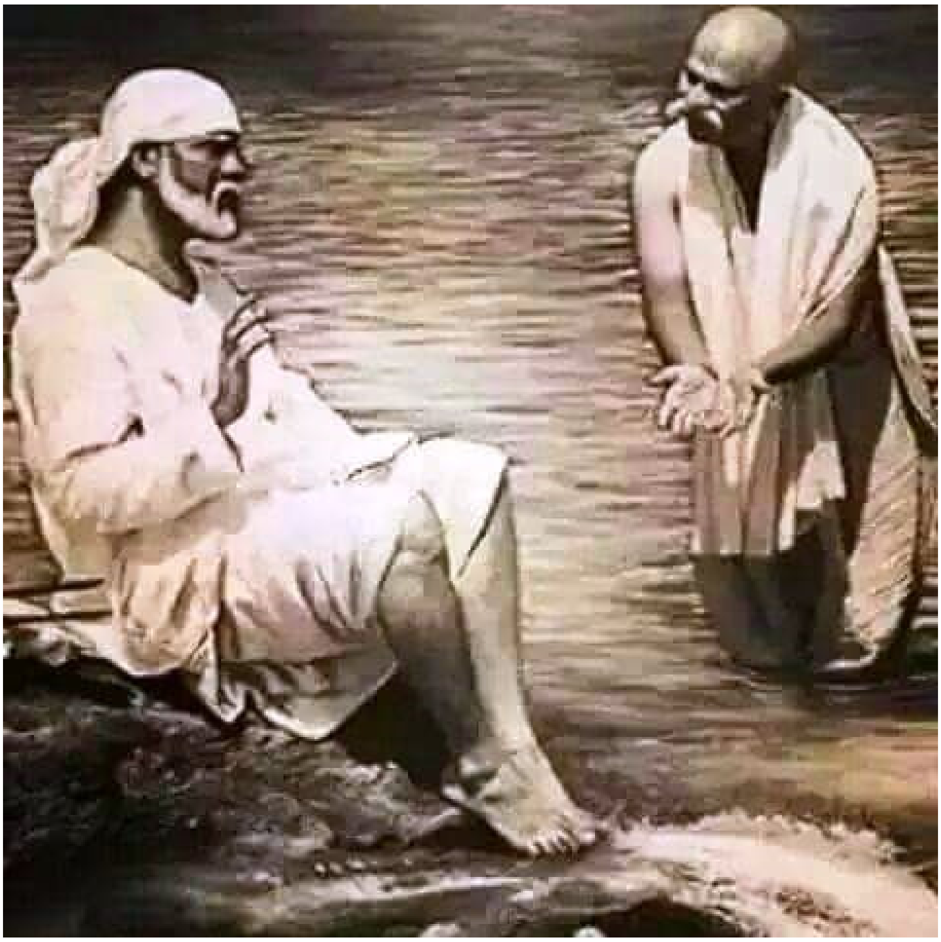

अद्ध्याय तीन

जिसका अध्ययन किया है उसका अनुसरण करो

"मैं, तुम, ईश्वर, सत्य, उसी तरह मारुति, पंढरपुर के विट्ठोबा, म्हाल्सपति, काशिनाथ, अडकर, साठे, हरिपंत, काका, तात्या, गणेश बेरे, वेणु, बालचंद्र - सभी ईश्वर के भिन्न आकार हैं। इसी कारण हमें किसी से घृणा नहीं करनी चाहिये। इसे भूलना मत। सर्वभौमिक प्रेम हृदय में अपने आप प्रस्फुटित होगा। एक बार वह भाव हृदय में स्थित हो जाये तब सभी उपलब्धियाँ संभव हो सकती हैं। तब तक मन को स्थिर और वश में रखना चाहिये।

जैसे मक्खी अग्नि के चारों ओर घूमकर वहाँ से पलायन करती है ठीक उसी तरह मन भी सर्वत्र जाकर, ब्रह्म की प्राप्ति के पश्चात पलायन करता है। जब तक हम ब्रह्म पर मन को केंद्रित नहीं कर पाते हैं तब तक जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। नारायण, हमें सबसे पहले इन सब से भागना होगा। इस मनुष्य की आक्रिति में जनम लेने से अच्छा और कोई अवसर नहीं प्राप्त हो सकता है। यह मनुष्य जनम हमें बहुमूल्य अवसर प्रदान करता है। साकार ईश्वर (मूर्ती) की पूजा की पद्धति हमें मन को केन्द्रित करने का अवसर प्रदान करती है।

जब कोई किसी भगवान की मूर्ती की पूजा करता है तब उसे इस भाव से पूजा करनी चाहिये जैसे वह देव उसमें बसता हो। मूर्ती की पूजा भक्ति और विश्वास से करने पर मन को केंद्रित करने की पद्धति अर्जित हो जाती है। बिना मन को केंद्रित किये मन स्थिर नहीं हो पाता है। अतयेव

पूजा तथा अध्यात्मिक ग्रंथों का पाठ कर, उन्हें स्मरण कर ध्यान करना चाहिये। जो पढ़ा है और जो संतों के मुख से प्रवचन सुना है उनका अभ्यास करना चाहिये। सभी ज्ञानों का श्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान है। जैसे पंचमुखी शिव ज्ञान में सर्वश्रेष्ठ हैं, जैसे मेरु पर्वत, पर्वतों में सर्वश्रेष्ठ है, उसी तरह इस आत्मा को जो बोध कर लेता है उसकी मुक्ति स्वयं ही खिंची चली आती है। महाबली भगवान उसके सेवक हो जाते हैं। आत्मबोध प्राप्त करने की पद्धति सबसे कठिन है। परंतु मोक्ष प्राप्ति के लिये यह सबसे सरल उपाय है। इसको और विस्तार से मुझे समझाने दो।

तुम, मरुति, हरिपंत, बेरे, काका, तात्या और अन्य इस पथ पर चल रहे हैं। जो तुम्हें और निमोनकर को मैने पहले बताया था उसे ध्यान में रखते हुए ईश्वर के समक्ष स्वयं को पूर्ण हृदय से समर्पित कर दो। महात्माओं के निकट जाओ और उनके दर्शन करो। हर किसी को जीवन में नैतिकता का नियमित रूप से पालन करना चाहिये और वे कार्य करने चाहिये जिनसे श्रेष्ठता की प्राप्ति हो। ऐसा व्यवहार करने पर तुम्हारे अंत समय तक तुम्हारे मन की शुद्धी हो जायेगी। अंत समय में किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति आकर्षण या प्रेम बढ़ाकर भ्रमित होना नहीं चाहिये। ईश्वर को स्थिर और केंद्रित मन से पुकारना चाहिये। अपने ईष्ट का ध्यान करो। ऐसे ध्यान से अंत समय पर सामिप्य मुक्ति की प्राप्ति होगी। अभी अभी बोधेगाँव में बन्नु नामक एक स्त्री ने अपने शरीर को छोड़ा है और इस स्तिथि की प्राप्ति की है। इसी तरह अडकर और वेणु भी मुक्ति प्राप्त करेंगे।" बाबा ने इस व्यख्यान की समाप्ति की और चाँदोरकर के सिर पर उनका दाहिना हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

चाँदोरकर का मन खुशियों से भर गया। उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और भक्तिपूर्ण भाव से हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "बाबा! हे सिद्धों के सिद्ध!

हे दया के पर्वत! आप ही मेरे माता एवम पिता और सर्वस्व हैं। हे पूर्ण और अनंत ब्रह्मस्वरूप! हे इस संसार के शुभ तत्वों के भंडार! हे इस जगतरूपी भयानक भवसागर को पार कराने वाले! मुझे आपने आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया है और मुझ मूढ़मती को मोक्ष की ओर अग्रसर किया है। आपकी दयालु कृपा इसी तरह हम सब पर बनी रहे।" बाबा दृढ़तापूर्वक बोले, "मैं अपने भक्त को कभी भी उसकी गरिमा से भ्रष्ट नहीं होने दूँगा। इसमें तुम्हें कोई भी शंका नहीं होनी चाहिये। यह मेरी प्रतिज्ञा रही। सर्वदयावान अल्लाह-इ-इलाही तुम्हें आशीष प्रदान करें।"

प्रिय श्रोताओं! भक्तगणों ने बाबा की असीमित महानता को मन में रखते हुए उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उनकी भक्ति इतनी तीव्र थी कि हम उनके चरणों के धूल के धूल समान भी नहीं हैं। हम अनाथों के बाबा ही माता-पिता हैं। वे हमें मोक्ष की ओर ले जाने के उद्येश्य से इस संसार में अवतरित हुए हैं। उसी महाराज के राजकीय दरबार में आज बाबा और उनके भक्तगण मिले। बाबा ने अपने हाथों से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के स्वादिष्ट पकवान भक्तगणों में बाँटने के लिये बनाये हैं। चलिये हम सब उस प्रसाद का अंशग्रहण करें। मन भरकर भोज कीजिये जिसका और जितना मन चाहे। अभी के लिये पर्याप्त हुआ। चलिये अपनों को उस महात्मा श्री साँई बाबा की ओर सुधारें। कुत्तों जैसे द्वार के चौखट पर बैठे रहें उन ज्ञान के टुकड़ों के लिये जो उनके मेज से गिरे। हमें यदि एक टुकड़ा भी उनसे प्राप्त हो जाये तो हमें मोक्ष मिल जायेगा। हमारा जीवन व्यर्थ नहीं जायेगा। आईये सम्भवत: यह अवसर हमें दुबारा न मिले। सहस्र यज्ञों के गुण यहाँ उपलब्ध हैं।

उन सभी को, जो इस अध्याय को भक्तिपूर्ण भाव से पढ़ें या तीव्र एकाग्रता से सुनें, मोक्ष प्राप्त हो। उस महान संत श्री साँई बाबा का इतिहास जो

’भक्त लीलामृत’ के तीन अध्यायों में दिया गया है वह गंगा, यमुना एवम सरस्वती के संगम जैसा है। आईये बाबा के दिये हुए इन तीन अध्यायों के उपदेशों के संगम में डुबो कर उसके गुणों का लाभ उठायें। सभी अनंदमय हों।

यहाँ दास गणु रचित ’भक्त लीलामृत’ के ३३वें अध्याय का अंत होता है

अद्ध्याय चार

परिचय

श्री गणेश को मेरा प्रणाम! शुभों में शुभ! हे वृहद पेट वाले! हे ज्ञान के स्वरूप! आप देवों में श्रेष्ठ हैं! हे कृपालु! अपने हाथों में मेरा हाथ पकड़कर सभी बाधाओं और अवरोधों को नष्ट कर मुझसे इस पुस्तक को लिखवाईये। 'संत कथामृत' वसंत के प्रथम क्षेप में आम्र वृक्ष के समान है। इस पुस्तक में लिखी गई पंक्तियाँ आम्र वृक्ष के कोमल टहनियों जैसी हैं। इनकी सीख उन स्वादिष्ट आम के फल जैसी हैं जो टहनियों को सुसज्जित कर रहे हैं। यदि यह पुस्तक पंच शीश वाले शिव के निवास कैलाश के पदतल में स्थित पवित्र झील मानस समान हो, तो उसका विषय उस झील के पवित्र जल जैसा है। 'संत कथामृत' उस पवित्र कमल जैसे है जो वहाँ जन्म लेकर खिल रहा है। श्री साँई बाबा की शिक्षा उस कमल से बहते हुये अमृतधारा जैसे है। आईये उस अमृत से स्वयं को परिपूर्ण कर लें।

'भक्त लीलामृत' के ३१वें, ३२वें तथा ३३वें अद्ध्यायों में मैंने आपको श्री साँई बाबा के बारे में बताया। उनके भक्त जो भी उनसे माँगते हैं वे उनके लिये वह कल्पवृक्ष हैं जो उन्हें वह सब प्रदान करते हैं। वे सबसे अधिक उदार हैं। दया के वे एक अपार सागर हैं। अपने भक्तों की देख रेख के लिये वे सदा ही सतर्क रहने के साथ साथ वे ज्ञान के पर्वत भी हैं। अपने भक्तों को इस भयानक भवसागर को पार कराने हेतु वे एक विशाल नौका हैं। एक बार उस सबसे सक्षम सदगुरु के दर्शन के लिये कुछ भक्तगण आये। वह पौस का महीना था। वे उस दिन आये जिस दिन धनुष नक्षत्र संक्रमण में था। सम्भवत: आपको शंका होगी कि वे ऐसे दिन क्यों आये।

आपको तो पता ही है कि धनुष (दिसम्बर) के माह में यह स्वच्छ रीति है कि भोर ही में सूर्य को भोजन अर्पण किया जाता है और फिर उसे खाया जाता है। उसी तरह यह भक्तगण भी दुख के शीत से बचने के लिये अंदर से भक्ति के उष्ण वस्त्र डालकर अपने सद्गुरु के दर्शन के लिये आये। शिरडी ही उस ज्ञान के सूर्य का निवास है। जो सूर्य वहाँ उदित हुआ वह श्री साँई बाबा हैं। तभी तो भक्तगण वहाँ एकत्रित हुए हैं। बाबा की दयायुक्त कृपा ही वह गुलाबी भोर है जो एक उत्तम दिवस का आश्वासन देता है। विश्वास और निष्ठायुक्त भक्ति की गंगा में स्नान कर अपने आप को शुद्ध कर इन भक्तों ने सदगुरुओं में इस मणि के दर्शन की तैयारी की। सबसे सक्षम बाबा ने उनके भक्तों के लिये सही ज्ञान का भोजन तैयार किया और थालियों में परोसा। मैं उसी धनुष के माह की बात कर रहा था। कई भक्तगण ने इस पवित्र समय में बाबा के निकट आकर उस ज्ञान के भोजन का स्वाद लिया जिसे उन्होंने इतने प्रेम से उनके लिये बनाया था।

ईश्वर का बोध कैसे हो - नाना चाँ�रकर को

नारायण चाँदोरकर पुत्र गोविंद एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उन्होंने चाँदोरकर परिवार में जन्म लिया। वे श्री साँई बाबा द्वारा आशीर्वादित थे तथा हरि पंत जैसे धार्मिक कार्यों में निपुण थे। वे अपने धर्मानुसार सदाचारी थे। बेरे, लक्ष्मण, मारुति और अन्य भक्तगण भी वहाँ उपस्थित थे। मैं उस देदीप्यमान दृश्य का वर्णन कैसे कर सकता हूँ? जैसे एक माँ से बिछड़ने के पश्चात जब एक शिशु उससे मिलता है और उसे प्रेम से टकटकी लगाकर देखता रहता है, ठीक उसी तरह वह भक्तगण अपने हृदय को

तृप्त करने हेतु मस्जिद में बैठ बाबा को देख रहे थे। वे समय की गति को भूल, आनंद में डूब चुके थे।
नाना सहेब चाँदोरकर ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा, "बाबा आप हमें उत्तर नहीं दे रहे हैं, यद्यपि हम कई बार आपसे पूछ चुके हैं। आप हमसे रुष्ट क्यों हैं? आप तो सत्य में सर्वशक्तिमान हैं। यदि आप हम से रुष्ट हो जायें तो हम इस विश्व में कहाँ आश्रित होंगे?"
बाबा मुस्कुराये, "मैं किसी से भी रुष्ट नहीं हूँ। तुम सब मेरे संतान हो। मैं किसके प्रति क्रोध व्यक्त कर सकता हूँ? मुझे किसी के भी प्रति क्रोध नहीं आता है। मैं वैसे ही हूँ जैसे आप सब सर्वशक्तिमान वेंकुशा के समक्ष हों। किसी और के प्रति रुष्ट या क्रोधित कोई क्यों होगा?" बाबा आगे बोले, "पहले जो तुम से कहा है उसे स्मरण रखना और अब जो खुलासा करने वाला हूँ, उसपर सचेत ध्यान दो। नाना यदि तुम मेरी पहले कह गयी बातों को मन में सयत्न बैठा चुके हो, तो तुम्हें चतुर्मुखी साधना की महानता के बारे मे ज्ञात हो चुका होगा। जो व्यक्ति इस चतुर्मुखी साधना को अध्यवसायी ढंग से अभ्यास करता हो उसे ब्रह्म का बोध अनायास ही प्राप्त हो जाता है। साधना, मोक्ष और सर्वपवित्र आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति की प्रचेष्टा को कहते हैं।

साधना चार प्रकार की होती हैं।
सर्व प्रथम होती है स्थाई और अस्थाई वस्तुओं की पृथकता की विवेचना ज्ञानपूर्वक करना
द्वितीय है असक्तिहीन होना
तृतीय है शम (वासना रिक्त होने की प्रक्रिया) के छः प्रकार के अभ्यास
-

१. बौद्धिक सय्यं
२. दम - शरीर और मन का नियंत्रण
३. तितिक्षा - सहनशीलता तथा समभाव
४. उपरति - बोधिक वस्तुओं से निर्लिप्त रहना
५. श्रद्धा - अपने गुरु तथा वेदांत के प्रति विश्वास
६. समाधान - धर्मग्रंथ संबंधी और ऊंचे तथ्यों के प्रति मन को केंद्रित करना

चतुर्थ है मुमुक्षु, वह आचरण जिससे ज्ञान को अर्जित करने हेतु सक्रिय खोज में लगे रहना

यह सीखना अत्यंत जटिल है, इसी लिये मुझे ध्यानपूर्वक सुनो।"

"सर्वप्रथम मुझे स्थायी एवम अस्थायी वस्तुओं की पृथकता की जाँच करने हेतु विवेचना के बारे में बताने दो। यह प्रतीत होना कि ब्रह्म ही सत्य है और यह संसार एक मिथ्या, और ऐसा होना जब दृढ़ और अटल विश्वास में परिवर्तित हो जाये, जो कि सभी विचारों का आधार बन चुका हो, तब यह जान लो कि स्थायी और अस्थायी की पृथकता का ज्ञान प्राप्त हो चुका है। कई इस स्थायी और अस्थायी की पृथकता की बात करते हैं और अपनी मूढ़ता का परिचय देते हैं। अनेक लोग दलों में रास्ते में भीक्षा माँगते हुए पंढरपुर जाते हैं। इनमें से किसी को भी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त नहीं होता है।

ब्रह्म कौन हैं? वे कैसे दिखते हैं? वे कहाँ रहते हैं? यह सब कौन जानता है? जो केवल अपना ढंडोरा पीटने कि वे भी पंढरपुर दलों में गये थे और उन्होंने भी तीर्थ यात्रा किया था, ऐसे लोग सत्य में भक्त नहीं हैं। कई लोग आध्यात्मिक पुस्तक पढ़ते हैं। वे दूसरों को सदाचारी का और उचित आचरण का पाठ पढ़ाते हैं और स्वयं पवित्र नहीं होते हैं। यदि मन पवित्र

है तब पुस्तकों अथवा शिक्षण का क्या काम? वे ज्ञान के सरोवर में उन मेंडक जैसे हैं जो कमल रूपी ब्रह्म से बहते हुए शुद्ध ज्ञान का पान करने की बजाय सरोवर के तले बंजर तर्क के कीचड़ को लोभयुक्त होकर खाते रहते हैं।

जो दूसरों की निंदा करते हैं वे इस कीचड़ में उलझे रहेंगे। उन्हें ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। जो बंजर तर्क को अपनाते हैं और दूसरों की निंदा करते हैं उन्हें ब्रह्म का ज्ञान उपलब्ध नहीं होगा। जिसको सांसारिक अथवा आध्यात्मिक वस्तुओं की लालसा न हो वह व्यक्ति ही सत्य में निरासक्त है। नाना! इसे सत्य जानो।

नाना! शम, दम, तितिक्षा, उपरती, श्रद्धा और समधन छः प्रकार की साधनायें हैं। शम का उद्येश्य उद्वेग उत्पन्न करने वाले वस्तुओं से मन को संयम में रखना। दम वह है जिससे मनोबलपूर्वक शरीर और उस से उत्पन्न उद्वेग को नियंत्रण में रख विलासिता के भोग से बच सकें। तितिक्षा धैर्य ही है। इसके सहारे वह सब जो हो रहा है उसे समभाव से ग्रहण करना कि वह प्रारब्ध के फलस्वरूप ही है, संभव होता है। उपरति से इंद्रियबोध को संयत करना होता है ताकि माया में गिरकर स्त्री, कांचन, बच्चे तथा संबंधियों को सत्य न समझ लें। गुरु के प्रति विश्वास और समर्पन को श्रद्धा कहते हैं। अब मैं अंत में उल्लेखित समधन के विषय में बताऊंगा. मुझे ध्यानपूर्वक सुनो।

सुख और दुख को एक ही दृष्टि से ग्रहण करना और हृदय को स्थिर रखने को समधन कहते हैं। जिसके हृदय में मोक्ष प्राप्ति की तीव्र इच्छा हो तथा वह शेष वस्तुओं का अग्राहय करता हो, ब्रह्म ज्ञान की खोज के पथ को निष्ठापूर्वक ढूंड रहा हो वह मुमुक्षु है। मैं मुमुक्षु का चरित्र वर्णन पहले भी कर चुका हूँ। मोक्ष कैलाश नहीं जहाँ शिव बसते हैं या वैकुंठ जो विष्णु का

स्थान है। मोक्ष प्राप्त करना बहुत कठिन है। मोक्ष प्राप्ति के रास्ते में कई अड़चनें तथा रुकावट हैं। नाना! पूर्ण ध्यान दो। पवित्र चेतना, जो कि इस विश्व का आधार एवं नीव है, से संयुक्त होना मोक्ष है। मनुष्य का उद्येश्य उस अनंत स्तर को प्राप्त करना (पुरुषार्थ) है। शेष सब व्यर्थ है।

नाना ने उस सक्षम पुरुष को आनंदपूर्वक सुना। उन्होंने विनीत भाव से हाथ जोड़कर पूछा, "बाबा पवित्र चैतन्य (चेतना) क्या है? उसकी क्या विशेषतायें हैं? और वह कहाँ मिलेगा?"

बाबा ने धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, "इस विश्व का आधार क्या है? वह निर्मित वस्तु क्या है जो जीवित प्राणी अथवा जड़ में उपस्थित है और तब भी उसका अवशेष पाया जाता है? वह प्राणिक शक्ति जो इस विश्व का आधार है वही पवित्र चैतन्य है। अंत में जिस में इस विश्व का भी विलय हो जाता है वह पवित्र चैतन्य है। जो हमारे चक्षुओं को इस सम्पूर्ण विश्व में दिखता है वह ही ब्रह्म है। वह पवित्र चैतन्य निर्विघ्न, 'सोहम' 'सोहम' के रूप में उद्योत हो रहा है। यह अनुभव सतत सभी प्राणियों को हो रहा है। तुमने पूछा था कि यह पवित्र चैतन्य कहाँ मिलेगा। मैं तुमसे पूछता हूँ कि वह कहाँ नहीं मिलेगा। तुम इस विश्व के हर स्थान को ढूंडो अथवा उसके बाहर भी, तुम्हें कोई ऐसी जगह नहीं मिलेगी जहाँ वह नहीं हो। सब कुछ पवित्र चैतन्य है। उसका कोई नाम नहीं और न ही आकार। जैसे कि वायु का कोई आकार या रूप या रंग या फिर कोई अन्य गुण नहीं होता, उसी तरह पवित्र चैतन्य भी है। वह पवित्र चैतन्य या ब्रह्म हैं। इस सत्य को कभी भूलना नहीं। संत लोग जिनको आत्मज्ञान हो चुका है वे सर्वदा इन ब्रह्म के सीधे संपर्क में रहते हैं। विभिन्न पशु, पौधे एवम मनुष्य उन्हीं के स्वरूप हैं। द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि, ज्ञान, ऊर्जा - इन सभी का आधार

पवित्र चैतन्य है। वह सर्वत्र है। वह परमानंद है। वह सच्चा ज्ञान है। पवित्र चैतन्य की यह आकृति ही ब्रह्म हैं।"

नाना अपने मस्तिश्क में अस्पष्ट थे। उन्होंने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा, "बाबा, हे सम्पूर्ण एवम सक्षम सदगुरु! आप कहते हैं कि ब्रह्म सर्वत्र हैं। आप कहते हैं कि वे सत्चिदानंद हैं और वे एक हैं। यदि वे एक हैं तो वे इतने सारे आकारों में इस विश्व में कैसे दिखते हैं? आप कहते हैं कि यह पवित्र चैतन्य से ही सभी जीव या जड़ भरपूर हैं। आप यह भी कहते हैं कि उनकी यह उपस्थिति सत्चिदानंद स्वरूप है। तब इस संसार में इतना कष्ट क्यों है? मुझे यह सझ में नहीं आता है। एक जन्मगत अंधा सौन्दर्य का कैसे सराहना कर सकता है? उसी तरह यह शुद्ध (पवित्र) चैतन्य जो कि सत्य है इस संसार में कैसे वास कर सकता है, जो कि माया रूपी मित्थ्या है? आप कहते हैं कि आत्मा ही शुद्ध चैतन्य है; इतनी सारी आत्माओं का अस्तित्व कैसे हो सकता है जब एक ही शुद्ध चैतन्य है? हर एक अत्मा के सुख और व्यथा तथा प्रसन्नता और कष्ट का अपना ही अनुभव होता है। आप कैसे कह सकते हैं कि एक मात्र शुद्ध चैतन्य सब में और सर्वत्र वास करते हैं? हर शरीर में एक भिन्न आत्मा वास करती है। आप कैसे कह सकते हैं कि वह शुद्ध चैतन्य ही आत्मा है? मेरी समझ से ये दोनो पृथक हैं। मेरी शंका दूर कीजीये।"

बाबा ने फ़िर धैर्यपूर्वक उत्तर दिया, "हे नाना, तुम यहाँ एक भूल कर रहे हो। अपने मस्तिष्क को केंद्रित कर स्थिर अवस्था में लाओ और मैं जो कह रहा हूँ उसे सुनो। कुछ पानी के बर्तन लो और उनमें सफ़ेद, काला, पीला, हरा, लाल, गुलाबी तथा गाढ़ा बैंगनी रंग मिश्रित करो। वे सब पृथक दिखते हैं। पर पानी सभी बर्तनों में एक ही है। लाल वाले बर्तन में पानी लाल लगता है और पीले वाले बर्तन में पीला। यदि किसी तरह मिश्रित

रंग पानी से निकाल दिया जाये तब वही पानी शेष रह जाता है। उसी तरह आत्मा एक ही है। मन अनेक होते हैं। जब आत्मा और मन एक जगह जुड़ जाते हैं, तब सुख और दुख का अनुभव होता है। इसे अच्छी तरह से जान लो नाना।

आत्मा में कोई भी पृथकता नहीं है और न ही वह विभाजित है। वह सर्वत्र समान और एक है। यही सत्य है। सुख और दुख मन से जुड़ा धर्म है। मन को चेतना तभी मिलती है जब वह आत्मा से मिल जाता है। मुझे इसका और सूक्ष्म व्याख्यान करने दो ताकि तुम इसे सरलता से समझ सको। यह चेतना परमार्थक, व्यवहारिक और प्रतिभासिक के रूप में उद्योत होती है और वह निर्भर करता है व्यक्तियों की प्रगती और आध्यात्मिक परिपक्वता पर। हे नारायण, यद्यपि शरीर एक ही है किंतु उसके कई रूप हैं, जैसे युवावस्था, वयस्कावस्था और वृद्धावस्था। चैतन्य का भी उसी तरह का प्रारूप है।

परमार्थक चैतन्य केवल संतों में ही पाया जाता है। जो अपने आचारों का शास्त्रों में विदित प्रणाली के अनुसार परिपालन करता है और यह जानता है कि किस ज्ञान को अपनाना है और किसे छोड़ना है और मोक्ष की ओर अग्रसर होता है वह व्यवहारिक है। जो असत्य को सत्य मानते हैं और जिसकी बुद्धि अज्ञान में डूबा हुआ हो वे प्रतिभासिक हैं। तुम्हारा यह जानना आवश्यक है कि प्रतिभसिक अबोध होते हैं, व्यवहारिक (मनीषी) बुद्धिमान होते हैं और परमार्थक संत होते हैं। ऐसा होने के बावजूद इन सभी में वही आत्मा दीप्यमान है। राजा उसके अधिकारी तथा उसके प्रतिनिधि सभी एक ही राज्य के भाग हैं। इनकी क्षमता का आधार तथा मूलभूत प्रतिष्ठा उस राज्य का संविधान होता है। इसके बावजूद उनमें भिन्नता रहती है। एक गज पर सम्मानित सवार होता है और सिंघासन

पर विराजता है। वह अपनी इच्छानुसार घूमता है। सभी लोग संविधान के अनुयायी होते हैं। यह सभी का दायित्व या धर्म है कि वे बिना किसी आपत्ति के उसके अनुयायी हों। राजा, उसके अधीक्षक, सेवक और उसकी प्रजा सब भिन्न हैं पर वे सभी उस संविधान का पालन करते हैं। राजा मर सकता है पर संविधान सदा जीवित रहता है। राजा का उत्तरधिकारी उस संविधान से अपने अधिकार प्राप्त करता है। यह संविधान कोई वाणिज्यिक वस्तु नहीं है जिसे बेचा या खरीदा जा सके पर सभी क्षमता उसीसे प्राप्त होते हैं। जिस संविधान के आधार पर राजा सिंघासन पर बैठता है उसी संविधान के आधार पर सेवक उसकी सेवा करते हैं और उसके आराम की देख भाल करते हैं। सबसे अधिक लाभ राजा को होता है; उसके राज्य अधीक्षक को उससे कम, उसके सेवक को उससे भी कम और साधारण नागरिक को सबसे कम लाभ होता है। ठीक उसी तरह जो यह जान चुका हो और अनुभव कर चुका हो कि उसकी आत्मा और ब्रह्म एक है वह ब्रह्म को पूर्णत: उपलब्ध करता है।" नाना ने, बाबा ने जो कहा, वह सुना। वह तब भी भ्रमित था। उसने पूछा, "वह संविधान हर किसी की आवश्यकता के अनुसार अपना आकार कैसे परिवर्तित करता है ताकि लोगों को विभिन्न प्रकार से लाभ हो सके? ऐसी भिन्नता से क्या उसका एकत्व नष्ट नहीं हो जाता है?"

"अच्छा पूछा नाना", बाबा ने कहा, "संविधान सम्पूर्ण रूप से संयुक्त और एक है। वह अविभाज्य है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह विभाजित है और भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न रूप से लागू होता है। पवित्र या शुद्ध आत्मा के क्षेत्र की स्तिथि भी यही है। शुद्ध आत्मा विभाज्य नहीं है परंतु व्यक्ति को वही प्राप्त होता है जो वह उपलब्ध कर सके। चलो हम उन विभिन्न परिमाण वाले बर्तनों का उदाहरण लें जो जल से भरे हुए हैं। वही

आकाश का प्रतिबिंब जो हमें विराट नदी में दिखता है इन बर्तनों में भी दिखता है। बर्तन छोटे या बड़े आकार के हो सकते हैं; जो आकाश बर्तनों में रखे पानी में दिखता है वही है जो नदी में दिखता है। नदी में आकाश का बहुत बड़ा प्रतिबिंब नज़र आता है। बर्तन के आकार के अनुसार आकाश छोटा या बड़ा नज़र आता है। क्या आकाश विभाजित हो गया? यही युक्ति शुद्ध आत्मा पर भी लागू होती है। यह संसार एक भ्रांति (माया) है। ब्रह्म और माया ने मिलकर इस विश्व का निर्माण किया है।"

नाना ने तब पूछा, "इस माया की उत्पत्ति कैसे हुई? किसने इसको उत्पादित किया? यह कब आयी और कहाँ से आयी? आपने यह बताया था कि शुद्ध आत्मा ही इस जगत का आधार और नीव है। आपने यह भी बताया था कि सारा विश्व ही शुद्ध आत्मा है। तब यह माया का आविर्भाव कहाँ से हुआ?"

बाबा जो कि दया की प्रतिमूर्ती हैं, ने धैर्यपूर्वक नाना को उत्तर दिया, "मैं तुम्हे बताऊंगा कहाँ से यह माया आयी। ध्यान केन्द्रित कर मुझे सुनो। हे गोविंदा के पुत्र। शुद्ध आत्मा में जो ऊर्जा है वह माया है। माया ने शुद्ध आत्मा को घेरा हुआ है। जैसे चीनी को उसके मिठास से अलग नहीं कर सकते, जैसे सूर्य को उसकी रोशनी से अलग नहीं कर सकते ठीक उसी तरह माया और ब्रह्म एक हैं। सूर्य और सूर्यप्रकाश दो अलग शब्द हैं। परंतु केवल इन दोनों को जोड़ने से ही सूर्य हमें दृश्य होता है। हम सूर्य की पृथकता उसकी ऊष्मा और उसके फैलाये हुए प्रकाश से निश्चित करते हैं। उसी तरह माया और ब्रह्म भी हैं। किंतु माया का कोई अंत नहीं और न ही शुद्ध आत्मा का। शुद्ध आत्मा का कोई आदी भी नहीं। वह केवल है। इस समस्त जगत की सृष्टि माया और प्रकृति द्वारा की गई है। पुरुष (ब्रह्म) और प्रकृति (माया) का सूक्ष्म विवरण 'अमृतानुभव' नामक पुस्तक

में पढ़ा जा सकता है, जिसे ज्ञानदेव ने निवासा गाँव के मोहिनिराज मंदिर में बैठकर लिखा था। उसके कुछ रहस्य संक्षिप्त में मैं तुम्हें बताता हूँ। एक बार जो आत्म अनुभव के गुफ़ा में घुस जाते हैं वे वापस अज्ञान की ओर नहीं लौटते। वे उस गुफ़ा का आकार लेकर वहाँ सत्चितानंद में विभोर नाच उठते हैं। ब्रह्म ही इसका कारण हैं। माया उन्हीं की रचना है। हे नारायण, इस माया की क्षमता अनाविष्कारित गहराई वाले असीमित सागर जैसे है। यह ऐह्सास कि, 'मैं अमुक हूँ' माया द्वारा ही निर्मित है। यह सच्चाई नहीं है। एक बार माया अपने धोखे के जाल को हम पर डाल दे, हम सत्य और असत्य को पहचान नहीं पाते हैं। माया के दो प्रधान चरित्र हैं। उन्हें पहचानो जो वे वास्तव में हैं। जो दृश्य है और सत्य है उसे माया छुपा देती है। जो अदृश्य है और अस्त्य है उन्हें माया दिखलाती है।
सभी लोग माया द्वारा वशीभूत हो जाते हैं और भ्रम के शिकार हो जाते हैं। किसी भृत्य को सपना आता है कि वह राजा बन गया है। इस स्वप्न द्वारा माया ने उसके भृत्य होने का स्वरूप बंद कर दिया है। इसके अतिरिक्त उसके राजा न होने के बावजूद माया की शक्ति से स्वप्न में वह राजा होने के भ्रम में घिर जाता है। इस तरह माया सच्चे ब्रह्म को छुपा देती है और उस संसार को दिखाती है जो केवल मोह है। वह केवल विश्वव्यापी चैतन्य है जिससे समस्त जगह भरपूर हैं। पर माया के कारण हमें केवल यह संसार दिखता है। इस संसार में सभी वस्तु केवल मोह हैं परंतु माया की शक्ति के कारण हम भ्रमित हो इन सब को सत्य मानते हैं। यदि प्रभेदी ज्ञान का प्रयोग कर हम माया के आवरण को हटाने में सफल होते हैं, तो ब्रह्म की चेतना होगी और वह दृश्य होंगे। तब तुम्हें यह चेतना होगी कि तुम ही संसार हो। शुद्ध जल तभी प्राप्त होता है जब उस में से उसे प्रदूषित करने वाले वस्तु छान लिये जाते हैं। उसी तरह

जब माया को हटा (छान) लिया जाता है तब पवित्र आत्मा दिखता है। हे नारायण, तुम सत्य के विषय में चिंतन करते हो, उसी के लिये प्रार्थना करते हो और उसी को पाना चाहते हो। आत्मा ही सत्य है। मैं सभी को यही बताता हूँ। समस्त आध्यात्मिक चेष्टाओं का एक मात्र लक्ष्य है उस आत्मा को पहचानना, उसको बोध करना और उसी में डूबा रहना।“

उन सब ने, जिन्होंने समस्त ज्ञान के भंडार श्री साँई बाबा के पवित्र अधरों से उन प्रज्ञता की बातें सुनी, उनको कृतज्ञतापूर्वक साष्टांग प्रणाम किया। वैद्य, साठे, चाँदोरकर, निमोनकर, बेरे, नाना, मारुति, लक्ष्मण, नूलकर एवम अन्य भक्तगण वहाँ उपस्थित थे। बाबा ने उन्हें प्रेम के चमकती हुई दृष्टि से देखा। वे बोले, "इन उपदेशों को अपने हृदय में संजोकर रखना। वे सदैव तुम्हारे जीवन में सही पथप्रदर्शक बने रहें।" उन सब ने अपनी स्वीकारिता देते हुए फिर से आभार व्यक्त करते हुए उनके चरणों का आलिंगन बारंबार किया। जब ज्ञान का सूर्य उगता है तब क्या अज्ञान का अंधकार रह सकता है? हे मेरे मालिक श्री साँई बाबा मुझे अपने गोद में उठा लीजिये। आपकी कृपा के विशाल वृक्ष की छाया में मुझ संतान को थोड़ा सा स्थान दे दीजिये।

यह 'संत कथामृत' सत्य ज्ञान की वृष्टि है जो श्री साँई बाबा रूपी उस महान मेघ से हम सब पर बरसी है। यह सब उनकी सेवा में निवेदित है।

अध्याय पाँच

जै श्री गणेश! हे केशव! हे पण्डुरंग! तुम तो अनादि अनंत हो। तुम सब के रचयिता हो। तुम ही सम्पूर्णतम के साकार रूप हो। वेद भी आपका विवरण करने में असक्षम हैं और असहाय हो, ’यह भी नहीं’, ’यह भी नहीं’ पुकारते हैं। तब मैं कैसे वह कर सकता हूँ? मैं, चमकते हुए सूर्य के समक्ष जुग्नू, महासागर के समक्ष नदिका जैसे हूँ। हे दया के महासागर। आप तो वह कल्पतरु हैं जो भक्त की सभी मंशाओं की पूर्ती करते हैं! आप तो सब के हृदय में बसते हैं! आप स्वत: चिरस्थायी परमानंद के स्वरूप हैं! आप चौंसठ कलाओं में निपुण हैं! आप अपने भक्तों की भलाई के लिये मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं। आप सब प्राणियों में सर्वश्रेश्ठ हैं, अनाथों के संकटमोचक हैं, मैंने आपके बारे में सुना है और दौड़ा चला आया हूँ अपने विमोचन के लिये। हे माधव! यदि आप मुझे लौटा देते हैं तो आपकी निष्कलंक महिमा की कुख्याति होगी। अत: तुरंत अपने हाथ मेरे सर पर रख कर मुझे आशिर्वाद दें। हे विट्ठल! आप तो मेरी माँ समान हैं! हे पंढरपुर के स्वामी! आपके सिवा, जो सभी सिद्धियों के गुरु हैं, कौन मेरी सुनेगा और मेरी रक्षा करेगा?

वेंकुशा का जीवन

केशव राव, महाराष्ट्र राज्य के एक छोटे से गाँव जम्बाववी में रहने वाले गृहस्थ थे। वे श्रीवत्स गोत्र के थे और उनका अश्वलायन सूत्र था। वे अपने धार्मिक कार्यों का निष्ठापूर्वक पालन करते थे और उन्होंने अपने शरीर पर अपने अटल विश्वास को प्रबल करने के लिये वैशणव चिन्हों का गोदन किया हुआ था। उनकी एक ही मंशा थी कि उनके गृहस्थ में एक शिशु का जन्म हो। वे स्वामी वेंकटेश्वर से अविरल यह प्रार्थना किया करते थे कि उनकी कृपा से उनका वंशज का जन्म हो। उन्होंने कई यज्ञ और धार्मिक आचरणों का पालन किया। इसी बीच उन्हें एक सपना आया।

वर्षा देने वाले काले बादल जैसे जिनका वर्ण हो, जिनकी आँखें कमल के पत्तों जैसे हों, जिनका क़द ऊँचा हो और जिनके वृहद छाती पर श्रीवत्स का चिन्ह बना हो, जिनके मुख मंडल पर मृदु मुस्कान हो, जिन्होंने रेशम के पवित्र पीत वस्त्र धारण किया हुआ हो, जिनके कपाल पर गेरुए रंग का पवित्र लाल चिन्ह हो, जिस महानतम की ग्रीवा का आकार शंख जैसा हो, जो चमकते हुए रत्नों से वैजयन्ति इत्यादि जैसे उद्योतित हो, जिनके हाथ शंख चक्र गदा पद्म से सुसज्जित हों, जिनका दक्षिण हस्त सर्वदा विवृत हो उन्नत मुद्रा में आशीष दे रहा हो मानो अपने भक्तों को वरदान देने हेतु उनका ध्येय पूर्ण कर रहे हों - उन भगवानों के भगवान - श्री महाविष्णु ने केशव राव को स्वप्न में आकर आशीर्वाद दिया। वे बोले, "वत्स, तुम यह चिंता न करो कि तुम्हारा कोई पुत्र नहीं है। रामानंद जिसने पूर्व में काशी में ज्ञान के भंडार की ख्याति अर्जित किया है तुम्हारे पुत्र के रूप में विश्व

को बचाने के उद्येश्य से जन्म लेगा।" इस प्रकार उन्होंने केशव राव को संतान का वर प्रदान किया। परंतु केशव राव पूर्नत: संतुष्ट न हुए। उसने कहा, "उस संतान को पाने का क्या लाभ जो शीघ्र ही सन्यासी बन जायेगा? मेरे परिवार की वृद्धि कैसे होगी? आपके यह वर उतना ही व्यर्थ है जैसे कि फल बिना वृक्ष, जल बिना तालाब, चंद्रिमा बिना रात्रि और सुगंध बिना कस्तूरी। इस पर सर्वशक्तिमान ने उत्तर दिया, "चिंता मत करो, तुम्हारा पुत्र गृहस्त होगा। उसका इस जीवन का यह उद्येश्य है। जैसे एकनाथ पैठन में, जैसे दामाजी धना में, उसी तरह तुम्हारा पुत्र भी धनी व्यक्ति होगा।" उन्होंने केशव राव को प्रसाद के रूप में एक नारियल दिया और लुप्त हो गये।

केशव राव प्रात: काल को उठे। उसने अपनी पत्नी को बुलाया और कहा, "मेरी पत्नी, स्वमी वेंकटेश्वर ने आखिर हम पर दया किया है। उन्होंने मुझे कल रात स्वप्न में दर्शन देकर आशीर्वाद किया है और यह नारियल प्रसाद स्वरूप दिया है। इसका भक्ति सहित सेवन करना। बांझ होने की जो कुख्याति तुमने प्राप्त की है वह शीघ्र ही मिट जायेगी। तुम शीघ्र ही एक सुन्दर लड़के को जन्म दोगी जो ईश्वर का बहुत बड़ा भक्त होगा।" पति पत्नी ने उस नारियल का सेवन किया और मन ही मन स्वामी वेंकटेश्वर का नाम उच्चारण करते रहे।

केशव राव की पत्नी जल्द ही गर्भवती हुईं। साधुओं में सर्वश्रेष्ठ रामानंद उनके गर्भ में प्रवेश कर चुके थे। सातवें महीने के निकट आने पर, वह

अपने पति से बोलती रही, "चलिये राजा के पास चलते हैं और हमारे निर्वाह के लिये उनसे सामर्थ माँगते हैं। हमारे घर पर अन्नदानम का अनुष्ठान करना है। दान धर्म कर अर्जित योज्ञताओं को श्रीहरि को अर्पित करें। हमें यह सभी खर्च उठाने हैं।" नौ महीने पश्चात रामानंद का जन्म जम्बुवावी गाँव में हुआ। उनका नाम गोपाला रखा गया। स्वामी पांडुरंग ने उस लड़के के देख भाल के लिये सभी व्यवस्था कर रखी थी। समयोपरांत गोपाला ने विवाह किया और गृहस्त के धर्म को निभाने में मग्न हो अतिथि एवम निराश्रितों की सेवा में विलीन हो गये। वह सर्वदा यह सोचते थे कि वह इस संसार में दूसरों के उपयोग कैसे आयें। एक बार वह सेलावाड़ी नामक एक गाँव में पहुँचे। वहाँ उन्हें रुकने के लिये कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिला। वहाँ केवल कुछ टूटी फूटी कुटियाएं थीं। गाँव वाले उनके निकट आये और बोले, "महाराज हमारे लिये यह जानना संभव नहीं कि आप एक धनी व्यक्ति हैं या फिर कोई राज कुमार। पर इस ग्राम में आपके ठहरने के लिये कोई भी उपयुक्त स्थान नहीं है। आपके स्तर के व्यक्ति के लिये प्रासादें, वाहनों, घोड़ों, सेवकों, गाड़ियों और बहुत सारी वस्तुओं की आवश्यकता होगी। यहाँ वे सब उपलब्ध नहीं हैं। भगवान श्री कृष्ण खुशी खुशी गोशाला में रहते थे। इस तरह उन्होंने गोकुल के भाग्य बदल डाले। उसी तरह हम आपसे विनती करते हैं कि आप इस गाँव में ठहरिये और इस मनहूस गाँव का भाग्य बदल दें। आपका नाम भी तो गोपालराव है जो कि श्री कृष्ण के नाम पर आधारित है। आपका डील-डौल शरीर तथा आपके मुखमंडल पर आभा यह बताते हैं कि या तो आप राज कुमार हैं या उनके प्रतिनिधी।

आप हमारी एक मात्र आशा हैं। आपका इस मनहूस गाँव में पदार्पण करना यह संकेत करता है कि हमारे भाग्य बदलने वाले हैं। अभी से आप और केवल आप हमारे स्वामी हैं।"

गोपालराओ को उनका संभाषण और उनकी अत्मयीता अच्छी लगी। उन्होंने निर्णय लिया कि उस स्थान पर वे एक क़िला या गढ़ बनवायेंगे। क्योंकि वे वहाँ बसना चाहते थे उन्होंने अट्ठारह व्यवसायों से व्यक्ति चुने, ब्राह्मण, बढ़ई, लोहार, कुम्हार, और बुनकर इत्यादि, और उन्हें पर्याप्त भूमी और वृत्तियाँ प्रदान कीं। किसी धनी स्वामी के सिवा ऐसा कौन कर सकता था? जैसे पारिजात जो फूलों में श्रेष्ठ है, अपने सुगंध के आनंद से हमें प्रफुल्लित रखता है, वैसे ही राजा अपनी प्रजा का संरक्षण देता है और उन्हें आनंदित रखता है। गोपलराव ने तद्पश्चात सेलावाड़ी का नाम बदल कर सेलु (या सैलु) रखा और अपने ही बल बूते पर उसे ज़िन्टुर राज्य का देशमुख जागीर बनाया। वे वहाँ के जागीरदार (अधिकारी जो राजा का प्रतिनिधित्व कर, राजस्व वसूलता है और वहाँ के निवासियों के लिये कानून व्यवस्था और संरक्षण देता है) बने और उसके पश्चात गोपालराव देशमुख कहलाने लगे।

गोपालराव अपनी पवित्रता की रक्षा करते हैं

उन दिनों जागीरदार लोग अत्यंत लोभी पुरुष होते थे जिनकी कोई नैतिकता नहीं होती थीं। वे अत्याचारी लुटेरे हुआ करते थे। उनकी साधारणत: कई पत्नियाँ और उपस्त्रियाँ होती थीं और ईश्वर की अवहेलना कर धन को

अपने विलास के लिये उपयोग करते थे। उनके घर की अवस्था उन दुकानों जैसे होती थीं जहाँ आते जाते केवल धन का ही उल्लेख होता था। जब उधारी में डूबे हुए होते थे तब भी वे अंधे जैसे अहंकार और पाप में लिप्त अपनी इच्छा अनुसार आचरण अपनाते थे। गोपालराव इन जैसे नहीं थे। वे सभी अच्छे गुणों के स्वरूप थे और नम्रता ही उनका आभूषण था। उनका सभी के प्रति दया का भाव था और सभी को समानता से ही देखते थे।

एक बार उनके जीवन में एक बहुत उल्लेखनीय घटना सेलु में घटी। मैं तुम्हें बताता हूँ वह क्या था। गोपलराव अपने क़िले के बुर्ज में टहल रहे थे। तभी एक कृशक वर्ग की लग भग २५ वर्षीय स्त्री किसी काम से वहाँ आयी और उनसे कुछ दूरी पर बैठी। उसके शरीर की सुंदरता का व्याख्या करना मेरे लिये आवश्यक नहीं है। शाम हो चुकी थी। संध्या का आगमन हो रहा था। मवेशी जंगलों में भरपेट घास चरने के पश्चात अपने आश्रय को लौट रहे थे। गोपालराव जो कि बुर्ज पर बैठे हुए थे उस स्त्री के सौन्दर्य का अपने चक्षुओं से पान कर रहे थे। जैसे शिव एक जनजाती (भील) स्त्री से मोहित हो चुके थे, उसी तरह गोपालराओ भी साँझ की कोमल रोशनी में प्रकट उस स्त्री के सौन्दर्य से मुग्ध हो चुके थे। उसी क्षण उन्हें ध्यान आया कि वे किसी अन्य की स्त्री को कामुक दृष्टि से देख रहे थे। "हे कामदेव! आपका तीर कितना क्रूड़ है! कौन जानता है कि आप किस क्षण

हम अचेत को अपना निशाना बना लेंगे?" उन्होंने वेदनायुक्त स्वर में कहा। वे तुरंत तीव्र गति से वहाँ पहुंचे जहाँ वे पूजा करते थे।

वे अपने भगवान श्री वेंकटेस्वर के समक्ष बैठे और दो सूँई लेकर अपनी आँखों को बींध दिया और अपनी दृष्टि को नष्ट कर दिया। "हे विश्व स्वरूप! हे अजेय! हे ब्रह्म! हे राघव राम! हे बरसने वाले काले बादल जैसे श्याम! कितने पापी हैं यह मेरे नयन! हे कमलेश! इन नयनों के छल के कारण मैं माया में पतित हो पाप कर रहा हूँ। हे देव! क्या कोई पापों में डूबा आपका बोध कर सकता है? इन भटकाने वाली आंखों को फोड़ने के सिवा मेरे पास और कोई भी उपाय नहीं था। हे माँ! हे विट्ठल! अब से मेरी सभी इन्द्रियों को दिशा देने वाले आप होंगे। हे रुकमिणि के स्वामी! आप मेरे मन के भी स्वामी हो। हम सब आपके हाथों में पुतले हैं। हे दया के स्वरूप! मेरे इन्द्रीय, मेरी बुद्धि और मेरा मन सदा आप ही की सेवा में अर्पित हैं। वह जो इस अस्थायी और क्षणिक सांसारिक जीवन में लिप्त हो, आप तक कैसे पहुंचे - आप जो सत्य के मूर्त रूप हैं? मनुष्य जन्म का महा भेंट जो मिला है वह आपकी प्राप्ति के लिये, न कि इंद्रियों की विलासिताओं के दलदल में डूबने के लिये। आपने इस जीवन को प्रदान कर हमें आपकी प्राप्ति का अवसर दिया है और यह आपकी हमारे प्रति अपार अनुकंपा है। पर मैंने इस अवसर को गंवाया है। हे पांडुरंग! क्या मुझे मनुष्य जन्म फिर प्राप्त होगा?" वे अपने विवेकीय श्री से पतन पर क्रंदन कर रहे थे।

यह खबर कि गोपालराव ने अपनी आँखें बींध ली थी, पूरे गाँव में फैल गई। सभी गाँव वाले उन्हें देखने शीघ्रता से पहुँचे। कुछ लोगों ने कहा, "महाराज आपने ऐसा कर्म क्यों किया? क्यों आपने अपनी आँखें बींध ली? यह संसार अब आपके लिये अंधकारमय हो चुका है। इस संसार के दृश्य और उनकी सुंदरता आप के लिये अस्तित्वहीन हो गये हैं।" उनकी अवस्था देख वे रोने लगे। उनकी पत्नी और पुत्र ने यह अंधे होने की बात सुनी और शोक के कारण छाती पीटते हुए चले आये।

उन्होंने क्रंदन किया, "यह त्रासदी क्या है? आपने ऐसा संकल्प क्यों किया जिसके फलस्वरूप अपने प्रति यह भयंकर क्रिया करनी पड़ी?" गोपालराव ने उत्तर दिया, "लोग जिस तरह का आचरण करते हैं उसे देखो। वे सत्य को एक ओर छोड़ कर मिथ्या को स्वीकारते हैं। यह नीच छलने वाले मेरे चक्षु मेरा विनाश करने चले थे। इसी लिये मैंने उन्हें दण्ड दिया है।" कुछ लोगों ने कहा, "यह देशमुख पागल हो गया है। क्या अपनी आँखों को फोड़ना वैराग्य है?" इस तरह हर एक ने अपना अपना मत व्यक्त किया।

इसी क्रम में ईश्वर ने गोपालराव पर इतनी दया की के जब वे पूजा में बैठते थे तब वे सभी आध्यात्मिक लेख एवम मंत्रों को पढ़ सकते थे। ईश्वर ने उन्हें ऐसा करने की इतनी शक्ति दी कि वे दिवा रात्रि इन ग्रंथों को पढ़ पाते थे। वे संत के रूप में प्रसिद्ध हो गये और उनका नाम दूर दूर तक फैल गया। बहुत दूर से लोग उनके दर्शन हेतु आने लगे। जैसे पंढरपुर, जैसे पैठन, सेलु भी गोपलराव के कारण प्रसिद्ध हो उठा।

एक बार एक स्त्री सेलु आई उनके दर्शन के लिये। उसने साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी, "हे योग्य! मैं जन्मगत अंधी हूँ। ऐसा कोई नहीं है जो मेरी रक्षा करे। यदि आप मुझे दृष्टि प्रदान करें चाहे एक आँख से भी, तो मैं उसे एक महान वर समझूंगी। जो भाग्यशाली हैं उनके लिये इस पृथ्वी का अस्तित्व है - मेरे लिये वही अस्तित्वहीन है। मेरे पास इस सुन्दर पृथ्वी को देखने के लिये एक आँख भी नहीं है। यह कहा जाता है कि सर्व अंगों में चक्षु सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पर वे निर्दयी परमात्मा ने मुझे दृष्टिहीन छोड़ने का विचार उचित समझा है। सभी शास्त्र यह बताते हैं कि महात्मा ईश्वर से भी महान होते हैं। इसी कारण मैं आपके पास सहायता के लिये आई हूँ। हे संत मुझ पर दया करो। मुझे दृष्टि का वर दो। जब तक आप मुझे मेरी इच्छा को पूर्ण नहीं करेंगे तब तक मैं आपके चरण स्थल नहीं छोड़ूंगी।" महाराज ने उसको धैर्यपूर्वक सुना। वे बोले, "मैं तुम्हें दृष्टि तब प्रदान करूंगा यदि तुम मुझे यह बताओ कि दृष्टि प्राप्त करने के पश्चात तुम क्या करने वाली हो।"

उस स्त्री ने अपने हाथ जोड़े और कहा, "मैं अपना पारिवारिक जीवन और भी अच्छी तरह से जी सकूंगी। मेरे पति अब मुझसे उपेक्षा करते हैं, क्योंकि मैं अंधी हूँ।" महाराज हंसते हुये विचारने लगे, "पुरुष व स्त्री सांसारिक जीवन में कितनी रुचि रखते हैं।" उन्होंने एक भृत्य से जो कि आंगन में मिर्ची पीस रहा था कुछ चूर्ण मिर्ची मंगवाये और अपने हाथों से उस महिला की आँखों पर लेप दिया। उसने तुरंत देखना प्रारम्भ कर दिया। विस्मय पर विस्मय! यदि किसी की आँखों पर पिसी हुयी मिर्ची लेप दी जाये तो वह कैसे देख सकता है? ये महात्मा कितने शक्तिशाली होते हैं?

यह निश्चित है कि इस कलि युग में महात्मा ही भगवान के आकार हैं। इसी तरह गोपालराव ने कई रोगों का निवारण किया। मैं सभी की व्याख्या नहीं कर सकता। अष्टसिद्धी गोपलराव के दास थे। परंतु उन्होंने इसका कभी भी ग्राह्य नहीं किया और केवल अपने सत-चित-आनंद मुरारी का ध्यान लगाते थे जो सर्वदा गोपालराव के चित्त में ही बसते थे। जैसे सीता के पिता जनक विदेह में बसते थे वैसे गोपालराव भी सेलु में बसते थे।

तीर्थ यात्रा और बाबा के आगमन की घोषणा

एक बार महाराज अपने परिवार सहित काशी के लिये तीर्थ यात्रा पर निकले। पुजारी एवम पंडित, उनपर निर्भरशील व्यक्ति, उनके मित्र, उनके सभी आत्मीय सज्जन तथा उनके पारिवारिक मित्र, उनके भृत्य, उनके रसोइये और उनके पालकी वाहक सभी उनके साथ इस तीर्थ यात्रा पर निकल पड़े। रासते में किसी गाँव में उनको रात्रि के लिये रुकना पड़ा। गाँव वालों ने उन्हें एक ऐसा घर रहने के लिये दिया जहाँ सब सेवायें आराम दायक ठहरने के लिये उपलब्ध थीं। पर वास्तव में यह एक पिशाच का प्रेतवाधित डेरा था। सब अपना भोजन शेष कर सो गये। मध्य रात्रि अग्रसर हो रही थी। आकाश चंद्रमा विहीन और अंधकारमय था। उसी समय एक विषम आकार महाराज के समक्ष प्रकट होकर खड़ा हुआ। उसके माथे पर सिन्दूर था और लम्बी लम्बी जिव्हायें थीं। उसके बिना कंगी किये हुए असंयोजित केश उसके कमर तक पहुंचे हुए थे। वह गहरे काले रंग का था तथा वह अपने हाथों से अशलील इंगिद करते हुए चिल्ला रहा था और इधर उधर फुदक रहा था। महाराज एक लकड़ी के तख़ते पर विराजमान शांत मुद्रा में ईश्वर के ध्यान में डूबे हुए थे। पिशाच उनके समीप आने

की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। दूर से ही वह महाराज पर चिल्ला उठा, "क्यों तुम मेरे घर आये हो?" महाराज ने उत्तर दिया, "तुम्हारा घर कहाँ है? यह तुम्हारा अहंकार और मेरा मेरा की मनोवृत्तियाँ हैं जो तुम्हे इस दुरवस्था तक ले आईं हैं। यह मकान लकड़ी, गीली मिट्टी और पत्थर से बना हुआ है। मुझे यह बताओ कि इन में से तुमने किसकी स्रिष्टि की है? तुम उसपर अपना अधिकार क्यों जमा रहे हो जो तुम्हारा नहीं है और जिसके प्रति तुम्हारा आकर्षित होने का कोई कारण नहीं है?" इन शब्दों से पिशाच को क्रोध आया और वह अपने हाथों में एक जलता हुआ अंगारा लेकर उसे बड़बड़ाते हुए प्रदर्शित करने लगा। महाराज ने जिस पवित्र जल से भगवान की मूर्तियों को स्नान कराया था, उसे अपने हाथों में लिया और उस पिशाच पर छिड़का।

पिशाच को तुरंत अपने पिछले दिन याद आ गये और उसने महाराज के पाँव पड़कर याचना की, "महाराज मुझे इस अवस्था से मुक्ति दिलवाईये। मैं एक धनी महाजन था। अपने धन के अहंकार में मेरी किसी के प्रति संवेदना न थी। मैं कंजूस था और किसी को एक पैसा भी दान में नहीं देता था। मैंने अपनी पत्नी का भी गर्भपात करवाया और उसे घर से भगा दिया, इस डर से कि वह गर्भ धारण कर बच्चे पैदा करे तो खर्चे बढ़ जायेंगे। मैं ऐसा कंजूस था कि मैं अपनी पत्नी को बारंबार उसके मायके भेज दिया करता था, इसी आशंका से कहीं उसके खाने पीने का तथा उसके पहनने ओढ़ने खर्चा मुझे न करना पड़े। मेरा एक छोटा भाई था। मैंने उसको कई तरह से क्षति पहुँचाई। अपने पिता के श्राद्ध क्रिया में भी मैंने खर्चा करना न चाहा और उस स्थिति को एक बहुत बड़ा काण्ड बना दिया।

इस तरह मैंने बहुत धन अर्जित किया और एक पात्र में छिपाये रखा और कष्टदायक मृत्यु पाई जब कि अंत समय में भी और अधिक धन इकट्ठा करने की लालसा अपनाता रहा। मैं अपने आप को केवल धन अर्जित करने के भँवर में फंसा चुका था और अंतत: इस तरह का पिशाच बन गया। मेरे इस अधम अंत से मुझे मुक्त कीजिये।"

पिशाच ने महाराज को वह स्थान दिखाया जहाँ उसने उसका धन छुपा रखा था और उनसे आग्रह किया कि वे उस अपार धन का दान और अच्छे कार्यों में उपयोग करें। उसने कहा, "महाराज मुझे बचा लीजिये अन्यथा आपकी प्रसिद्धि में एक काला धब्बा लग जायेगा। यदि विशाल सागर में कोई नहाये और फिर भी सूखा रह जाये तो सागर का कितना बड़ा अपमान? यदि कस्तूरी की सुगंध किसी के शरीर पर लगे हुए धूल तक न पहुँचे तो क्या वह सुगंध के नाम पर मलिनता नहीं?" महाराज को पिशाच पर दया आ गयी। उन्होंने उसे सांत्वना देते हुए कहा कि वे वह सारी राशी को दान धर्म में उपयोग कर उसके अधम अस्तित्व से मुक्त करेंगे। उन्होंने उस समस्त दफ़नाए हुए धन को गाड़ियों में लादा और अपने अगली सुबह की यात्रा की तैयारी की।

अगले दिन सभी गाँव वाले वहाँ आये और महाराज तथा उनके सहयात्रियों को जीवित देखकर चकित रह गये। उन लोगों ने कहा, "जो भी उस मकान में रहा है, उसी रात वह अधोलोक की यात्रा कर चुका होता है।" "महाराज किस प्रकार जीवित रह गये?" यह प्रश्न उन्हें सताती रही। वे इस निष्कर्ष

पर पहुँचे कि अवश्य ही वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं और कोई संत हैं, जिन्हों ने आत्म बोध कर लिया है और वे उनके चरणों पर गिर पड़े। महाराज ने उनको पिशाच की सारी कथा सुनाई और वे लोग यह जानकर खुश हुए कि शीघ्र ही उन्हें इस पिशाच से छुटकारा मिल जाएगा।

महाराज ने सारा धन काशी में ही दान धर्म में खर्च कर डाला और उस पिशाच को उस अधम अवस्था से मुक्ति दिलाई। महाराज बाद में काशी, प्रयाग गए और अयोध्या भी, जो सरयू नदी के किनारे स्थित है। यहाँ से वे कुरुक्षेत्र, वृंदावन, गोकुलधाम, मथुरा, द्वारका, सोमनाथ व पैठन और नर्सी मेह्ता के दर्शन करने जूनागढ़ गए। बाद में वे अहमदाबाद गए और सुराग शाह के दरगाह का दर्शन किया। सुराग शाह का इतिहास महीपती ने भक्त लीलामृत के अध्याय ४३ में लिखा है। मैं आपको उस लीला का वर्णन करूंगा जो महारज के सुराग शाह के दर्गाह पर पहुँचने पर घटी।

जैसे महाराज दर्गाह के निकट पहुँचे, दर्गाह को पसीने आने लगे और वह बोलने पर तत्पर हुआ। "सलाम आलैकुम। आप पिछले जनम में रामानंद महर्षि थे। हे दया के महासागर आप मुझे भूले नहीं हैं। यद्यपि आप वर्तमान में निज़ाम राज्य के सेलु गाँव के देशमुख हैं मैंने आपको पहचान लिया। सेलु गाँव से दस मील दूर मनावत गाँव है। आपके शिष्य कबीर ने वहाँ एक फ़क़ीर के बेटे के रूप में जन्म लिया है। यह सत्य है। आपके सेलु गाँव में बसने से वह गाँव धन्य हो गया है।" दर्गाह के रखवाले, वे शब्द कहाँ से सुनायी दे रहे थे समझ न पाते हुए चकित रह गए। उन्हें

बाद में समझ आया कि यह दो महात्माओं में वार्तालाप हो रहा था। महाराज वहाँ से निकले और डाकुर पट्टन तथा सिद्धपुरा पहुँचे व तद्पश्चात सेलु लौटे।

जब तक महाराज घर पहुँचे उनके बेटे लक्ष्मणराव की मृत्यु हो गई। गोपालराव की पत्नी और उनकी पुत्रवधु ऐसा क्रंदन कर रही थीं जैसे कि उनका हृदय टूट चुका हो। गोपालराव अविचलित थे। उन्होंने अपनी पुत्रवधु से कहा, "एक बुदबुदा फूटा है। उसके विलाप में इस तरह रोना व्यर्थ है। हम अपने घर के दीवालों को रंग करते हैं और समय के साथ साथ रंग फीका पड़ जाता है। क्या ज्ञानी इस लिये रोते हैं कि रंग फीके पड़ गए? क्या कोई मरीचिका से उत्पन्न उसके प्यास को बुझा सकता है? यह संसार भी एक मरीचिका है। यह संसार एक भ्रम है। जो कुछ आपके आस पास दिखता है वह सब अस्थायी है। यह एक जादू की क्रिया है। तथ्य यह है कि कौन जन्म लेता है और कौन मरता है? हमें जितने भी सम्बंध दिखते हैं वे सब हमारे सपनों के संसार के जादूघर की माया की उलझनें हैं। जैसे ताल सूख जाता है, सूरज का प्रतिबिम्ब भी लुप्त हो जाता है। क्या इससे यह प्रमाण होता है कि सूरज का अस्तित्व नहीं है? यह परिस्थिति भी ऐसी ही है। इस वृथा के क्रंदन और शोक को रोको। अपने पुत्र खांडेराव का देख भाल करो। इसके उपरांत रोने का कोई अर्थ नहीं है।" उनके पुत्रवधु के शोकाकुल अवस्था को इस तरह सांत्वना मिली। लक्ष्मणराव की अंतिम क्रियाएं इस तरह साकार हो पाई।

ये महाराज सभी श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न थे, जैसे साम, दाम, मन और इंद्रियों का संय्यम तथा उपरति। जैसे जैसे उनकी ख्याति फैलती गई लोग दूर दूर से उनके दर्शन करने आने लगे। कुछ तो लम्बे समय से ढींट रोग से ग्रस्त थे, जो केवल उनके दर्शन मात्र से निरोग हो गए। किसी किसी को धन मिला और किसी को महाराज ने नैतिक मार्ग दर्शाकर सही रास्ते पर ले आए।

बाबा का वेंकुशा के पास आना

एक बार एक फ़कीर की पत्नी महाराज के दर्शनार्थ मनावत गाँव से आई। अब इस कथा को धैर्यपूर्वक सुनिये। वह वृद्धा थीं और फटे पुराने कपड़ों जिनकी कई बार रफ़ू व मरम्मत की गई हो से लदी हुई थीं। उनकी आयु ५० से ऊपर हुई होगी। जैसे फ़कीर लोग करते हैं उन्होंने एक कंधे पर कपड़े का झोला लटकाया हुआ था और हरी चूड़ियाँ पहनी हुई थीं। उनकी पीठ पर एक पांच वर्ष का लड़का था। वह पिछले जन्म में कबीर था। वह आग्रहपूर्वक एक रोटी का टुकड़ा खा रहा था। ग़रीबों को मिठाई से अधिक रोटी से तृप्ति मिलती है। महाराज तब उनके राजकीय दरबार में बैठे थे। सैनिकगण जो पहरेदारी कर रहे थे महाराज की उपस्थिति में उस वृद्ध स्त्री को प्रवेश नहीं करने दे रहे थे। सैनिक आदत से क्रूड़ होते हैं। ये सैनिक उस महान महाराज के थे जो एक देशमुख भी थे। अत: उनका व्यवहार उन बंदरों जैसे था जो पेड़ों पर चढ़कर हर आने जाने वाले व्यक्तियों को बिना किसी उद्येश्य के तंग कर अपनी मस्ती करते हैं।

वृद्ध महिला ने लड़के को नीचे उतारा और द्वार के निकट से ही महाराज को साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने हाथ जोड़कर निष्ठा पूर्वक प्रार्थना किया और बोलीं, "महाराज पाँच सप्ताह हो गए हैं कि मेरे पति परलोक को सिधार गए हैं। मैं अब विधवा हो गई हूँ। आप ही हमारे संकटमोचक हैं। परलोक सिधारने से पहले उन्होंने मुझ से कहा था, 'सेलु जाना। वहाँ रहने वाले महाराज उन सब के रखवाले हैं जिनका कोई देख रेख करने वाला न हो। वे तुम्हारी अंतिम दिनों तक देख रेख करेंगे।'"

महाराज ने उन्हें अनंदपूर्वक सुना। उन्होंने कहा, "कबीर की माँ कबीर को मेरे लिये ले आईं हैं।" वे अपने आसन से उठ खड़े हुए और उनके पास में जाकर खड़े हो गए। उन्होंने दोनो हाथों से उन्हें पकड़ा और उन्हें सांत्वना दिया जैसे कि वे उनकी अपनी माँ हों। वे बोले, "माँ मैं कबसे उत्सुकता से आपके आने की प्रतीक्षा कर रहा था। आप और आपका बच्चा अनंदपूर्वक मेरे निवास में रह सकते हैं।" महाराज को देख, बच्चा स्वत: ही शब्द बोलने लगा, जो अभी बालक सा सरल और अभी परिपक्व थे। "मेरी माँ को अब मेरा दायित्व क्यों निभाना पड़ेगा? क्योंकि मैं यहाँ आ गया हूँ अब मेरी माँ का मेरा कोई दायित्व भी नहीं है और न ही उसका कोई अधिकार है मुझ पर। मैं अब उसका नहीं रहा। मैं अब हर तरह से आप ही का हूँ।" फ़कीर की पत्नी को रहने के लिए उस मकान में एक कमरा दिया गया। महाराज लड़के के लिए बहुत सारा प्रेम और लाड़ बरसाते रहे। इसके फलस्वरूप सारा कुटुम्ब ही उस बालक के प्रति आक्रोश व्यक्त करने लगा। उन में

ईर्ष्या और डाह उत्पन्न होने लगा कि इतने लघुकाल में वह महाराज का इतना प्रिय कैसे हो गया। उस बालक के बारह वर्ष की आयु होने के पस्चात उसकी माँ की मृत्यु हो गई।

दूसरों की ईर्ष्या

एक दिन शाम को महाराज उस बालक को लेकर एक निकटवर्ती जंगल में गए और वहाँ चार महीने रहे। इससे महाराज के रिश्तेदार तथा निकट के लोगों में बहुत हलचल मच गया। उन्होंने अफ़वाह फैलाना आरंभ कर दिया कि फ़कीर की पत्नी काला जादू जानती थीं और काली विद्या में निपुण थीं। उन्होंने यहाँ तक कहा कि उन्होंने महाराज पर अवश्य कोई मंत्र पढ़कर उस बालक के प्रति इतना अनपेक्षित प्रेम और वात्सल्य उत्पन्न करा दिया है। इसी लिए महाराज इस बालक के प्रति इतना आकर्शित हैं और उसे एक क्षण के लिये भी अकेला नहीं छोड़ते हैं। उन्होंने कहा, "महाराज ब्राह्मण हैं। वे अश्वलायन गोत्र के हैं और एक पवित्र वैशणव हैं; यह बालक एक नीच जाति का मुसलमान है। एक पवित्र गोदावरी है तो दूसरा कीचड़ का गड्ढा है। महाराज पारिजात वृक्ष के समान हैं जिनकी ख्याति दूर दूर तक फैली हुई है और वह बालक एक कंटक पौधे जैसे। महाराज ने आत्मज्ञान की उपलब्धी की है तथा राम व विष्णु के सहचारी हैं और वह बालक एक शैतान है। एक ज्ञान के अधिकारी हैं जिनकी चमक से लोगों को प्रकाश की प्राप्ति होती है और दूसरा दुर्गंध से भरा खाद का ढेर है। महाराज को

इस अयोग्य बालक से क्या लगाव हो सकता है? इसके अतिरिक्त यह प्रचार भी है कि यह रद्दी, पिछले जन्म में कबीर था! यह असहनीय है। चलो इस बालक की जंगल में हत्या कर देते हैं और उससे निपट लेते हैं। महाराज के पास और कोई उपाय नहीं रहेगा और वे हमारे पास वापस आ जायेंगे। इस बेकार अधम की वजह से महाराज निकृष्ट बदनामी के भागिदारी बन रहे हैं।" गुप्त रूप से वे इकट्ठे हुए और एक रात्री को जंगल में गए। महाराज और वह बालक सो रहे थे। महाराज सामने सो रहे थे और उनके पीछे बालक सो रहा था। वे उस बालक की हत्या करना चाहते थे इस लिये एक ने ईंट उठाकर पूरे बल सहित उसके सर को निशाना बनाकर फैंका। ईंट जाकर महाराज को लगा। उनके माथे पर गहरी चोट आई और वे लहू लुहान हो गए। महाराज को बहुत पीड़ा हुई। महाराज उठ बैठे और घाव पर चूना लगाकर उस पर पट्टी कर ली।

जिस व्यक्ति ने ईंट फैंका था वह तुरंत ही मर गया। जो महात्माओं को क्षति पहुँचाने की सोचते हैं वे स्वयं ही क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। बालक महाराज के सर को लहू लुहान होते देख □र के कारण रोने लगा। उसने रोते हुए कहा, "महाराज आप तो अत्यंत निष्ठावान एवम धर्मनिष्ट हैं। आपके अनेक गुण हैं। इतने गुण होने के बावजूद आपको मेरी वजह से यह पीड़ा सहनी पड़ी। आप अब तो मुझे विताड़ित कर दीजीये। पूर्व में सज्जनगढ़ के स्वामी रामदास सामर्थ ने उनके एक शिष्य को कल्याण से दोमागा भेज दिया था क्योंकि दूसरों ने उसके प्रति शत्रुता पैदा कर ली थी।

उसी प्रकार मुझे भी आप कहीं दूर भेज दीजीए।" महाराज बोले, "मैं इस पृथ्वी पर कुछ ही घंटों का मेहमान हूँ। मैं सेलु तब तक नहीं लौटूंगा जब तक मैं तुम्हें मेरा सब कुछ दे न दूँ। तभी यह मूर्ख तुम्हारी शक्ति एवम क्षमता को जानेंगे। अब जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो। उस निकटवर्ती गाँव में एक लम्बाडी (आदिवासी) के पास एक पीले रंग की गाय है। उसे कहो कि मैं उस गाय का दूध मांग रहा हूँ। उस गाय को दुह कर उसका दूध मुझे लाकर दो। और देर मत करो। तुरंत जाओ और दूध ले आओ।" बालक उसी क्षण उस गाय के लम्बाडी स्वामी के पास गया और उसे महाराज के आदेश का विवरण देकर उससे उस गाय को दुहने की आज्ञा की विनती की। उस लम्बाडी का नाम आहुल्ला था। उसने कहा, "यह गाय बाँझ है। यह दूध ही नहीं देती। मैं अपने खेत के कार्य में इसे बैल जैसे व्यवहार करता हूँ।" वह उसी क्षण उस गाय को लेकर महाराज के पास गया और बोला, "स्वामी! हे योग्यपुरुष! यह गाय दूध नहीं देती है। उसके थनों को दबाना व्यर्थ है। यह गाय मेरे पास पिछले पंद्रह वर्षों से है परंतु इसने अब तक एक बूंद दूध भी नहीं दिया है। मैं इसे यहाँ इस लिये ले आया हूँ ताकि आपको मैं अपने कथन की सत्यता का आभास करा सकूँ।"

महाराज जो कि गुणों के पर्वत थे, अब तक धैर्यपूर्वक लम्बाडी को सुनते रहे। उन्होंने कहा, "तुम मूर्ख हो। तुम्हें इस गाय के थनों के बारे में कुछ नहीं मालूम। इस गाय ने अपने थनों के रहस्य को इतने वर्षों तक तुमसे गुप्त रखा है। मुझे बर्तन पकड़ाओ। मैं स्वयं ही इसको दुहाऊंगा।" उस महात्मन ने गाय के पीठ पर हाथ रखा। जैसे ही महात्मा के हाथ ने उस

गाय के शरीर को छुआ, उसके थनों से दूध का घना फुव्वारा फूट गया। जिस गाय ने पंद्रह वर्ष से दूध नहीं दिया, उसने तीन लीटर दूध दिया! वह दूध, घना, समृद्ध और मीठा था। महाराज ने फ़कीर बालक का हाथ पकड़ा और कहा, "इस दूध को पी जाओ। इन भागों में कहीं नहीं निवास करना। पश्चिम दिशा में गोदावरी के दक्षिणी छोर पर इन भागों से दूर चले जाओ।" उन्होंने अपने माथे से पट्टी खोली और उस बालक के सर पर बाँध दिया। वे बोले, "यह कपड़े का टुकड़ा जो मैंने तुम्हे दिया है, वह तुम्हारा सम्पूर्ण भविष्य है। जो तीन लीटर दूध मैंने तुम्हे दिया है, वह कर्म, भक्ति और ज्ञान है। मैंने उस दूध में पवित्र मंत्र लिखे हैं। यह तीन लीटर दूध पी जाओ। तुम्हें सच्ची मनीषा प्राप्त होगी।" उस फ़कीर बालक ने महाराज के चरणों में अपने घुटने टेके और उस दूध को पी गया। उस दूध को पीते ही उसने सम्पूर्ण विश्व को ब्रहम से भरा हुआ देखा। ऐसी थी गुरु की महीमा। महाराज ने उस बालक को छाती से लगा लिया। वे बोले, "मेरे बच्चे, तुम पिछले जन्म में कबीर थे। इस जनम में तुमने यह शरीर धारण किया है। तुम्हारे पिछले जनम में तुमने अपनी पत्नी को सहृदय बनिये के हवाले कर दिया था। तभी तुम सयंमी ब्रहमचार्य का अवलंबन कर पाये हो और योग्यता की प्राप्ति भी। सृष्टि और ईश्वर को कभी भी पृथक मत समझना। अपना ध्यान सर्वदा सर्वशक्तिमान ईश्वर पर ही रखना। तुम सर्वदा परमानंद में ॒ूबे रहोगे। मैं रामानंद हूँ, हमारे पिछले जनम में मैं कशी में तुम्हारा गुरु था। केवल तुम्हारे कारण इस जनम में मैंने सन्यास नहीं लिया। पिछले जनम में कबीर के रूप में तुम कविताओं की रचना किया करते थे। इस जनम में शांत रहना और संक्षिप्त में बात करना। एक स्थान पर स्थिर रहना और उन सबको मोक्ष प्राप्त कराना जो स्वयं

को तुम्हें आत्मसमर्पण कर दें। अब मैं सेलु लौटूंगा और समाधिस्त हो जाऊंगा। ईस संसार में अब मेरा कार्य शेष हो चुका है।"

उन्होंने निकट में खड़े हुए व्यक्तियों की ओर देखा। वे बोले, "क्यों अपने चेहरों को शर्म से छुपा रहे हो?" वे लोग महारज के चरणों की ओर दौड़े और साष्टांग मुद्रा में गिर पड़े। "महाराज हमें क्षमा करें। कृपा कर के हमारे उस साथी का जीवन लौटा दें जिसने पत्थर से आप पर वार किया था। अन्यथा आपकी ख्याति पर वह एक धब्बा बन कर रह जायेगा।" उन लोगों ने उनसे सहृदय प्रार्थना की। महाराज ने उत्तर दिया, "मेरे पास अब कोई शक्ति शेष नहीं बची है। यदि तुम लोग अपने साथी को जीवित चाहते हो तो तुम्हें इस बालक के पास याचना करनी पड़ेगी।" वे लोग तुरंत बालक के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना की, "बाबा, आप तो ज्ञान की पूर्णिमा हैं। अब और देर न करें। कृपया इस मृत को पुन: जीवित करें।" उस अनाथ ने उनकी प्रार्थना सुनी पर उन्हें समझ नहीं आया कि वे क्या करें। वे जिज्ञासा के भाव से अपने गुरु महाराज को भक्ति भाव सहित तकते रहे। महारज ने अनुमोदन करते हुए अपने सर को तिरछा किया और मृत को जीवन दान देने के लिये इंगिद किया। वे बोले, "जहाँ तक लोगों का प्रश्न है, अब से तुम मेरे संतान हो, मेरे प्रतिनिधि।" फ़कीर बालक ने अपने गुरु महाराज के चरणों से कुछ धूल उठाई और मृत देह के माथे पर लेप दिया। तुरंत ही प्राण उस मृत में वापस आ गये और वह उठ बैठा। वे सभी अनंदित थे और गुरु और शिष्य को एक जुलूस में वापस सेलु ले गए। अगले दिन मार्गशीरा माह (अग्रहायन) का एकादशी था। महाराज ने अपने सभी शिष्यों को निकट आने के आदेश दिया और कहा, "आज मैं वैकुंठ श्री हरि के निवास जा रहा हूँ। मेरी चिता जलने के स्थान पर एक अंजीर का वृक्ष उगेगा। यदि तुम उसके जड़ के निकट पाँच

फ़ुट तक खोदोगे तुम्हे एक भूरे रंग की चार कंधों वाले वेंकटेश्वर की मूर्ति मिलेगी। मूर्ति को वहीं स्थपित कर देना और एक मंदिर बनवा देना। उस मंदिर को मेरी समाधी के रूप में स्वीकारना। मेरे लिये कोई दूसरी समाधी मत बनवाना।" उन्होंने हर एक शिष्य को उनके दायित्व और कर्तव्यों के बारे में बताया और फिर स्नान के पश्चात संध्या पूजन किया। उन्होंने औपचारिक रूप से भगवद गीता का पाठ किया। उन्होंने सब को नारायण के पवित्र नाम को दोहराने के लिये कहा। वे फ़कीर बालक की ओर देखते रहे। उन्होंने अपने वस्त्र को निकालकर उस बालक की ओर फैंका और बिदाई के संकेत देने लगे। वे तुरंत उच्य स्वर में बोलने लगे,

जय जय नारायण श्री हरि!

हे वेंकटेशा! पूतनारी!

पाहिमाम! पाहिमाम! मुरारी

उनोंने तीन बार उच्य स्वर में इनका उच्चारण किया और अपना पार्थिव शरीर छोड़ गए। ठीक वैसे ही हुआ जैसे महाराज ने भविष्यवाणी किया था। शिष्यों ने महाराज के आदेश अनुसार सब कार्य किया। उन्होंने मंदिर की स्थापना की और स्वामी वेंकटेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा सभी आचरणनुसार किया। मंदिर का निर्माण और प्रतिष्ठा के अनुष्ठान खूब धूम धाम से किया गया। यह मंदिर शक्ति के प्रतीक का मंदिर के नाम से बहुत विक्ख्यात हो चुका है।

फ़कीर बालक ने गुरु के दिये हुए कपड़े को, कफ़नी जैसे पहना और उस क्षेत्र को छोड़ कर चला गया। यह मेरा द्दढ़ विश्वास है कि यह बालक और कोई नहीं बलकि श्री साँई बाबा हैं। आज की तिथि में गोपालराओ देशमुख की पाँचवी पीढ़ी सेलु में वास करती है। उनका नाम है श्रीनिवासराओ। सेलु के निवासी हर शुक्रवार महाराज की समाधी पर भक्तिसहित जाते हैं और

वहाँ एक उत्सव मनाते हैं। मैं उस फ़कीर बालक को जिन्हें गोपालराओ महाराज का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था भक्ति और विश्वास के साथ नमन करता हूँ। उस सर्वोत्तम संत के समक्ष मैं साष्टाँग प्रणाम करता हूँ। जो तिरुपति नहीं जा पाते हैं, वे सेलु जाकर सभी वर को प्रदान करने वाले उस महान भगवान वेंकटेश्वर के दर्शन करें। वे सभी प्रकार के लाभ उस उदार स्वामी से प्राप्त करें।
दास गणु सभी उन भक्तों के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि जो भी इस 'भक्त सारामृत' को पढ़े उसे मोक्ष प्राप्त हो। यह पुस्तक हरि और हर को अर्पित है। ईश्वर सबको आशीष प्रदान करें।

यहाँ पर 'भक्त सारामृत' का २६वाँ अध्याय समाप्त होता है।

टिप्पणियाँ और उद्धरण

उत्तर भारत में महात्माओं और साधुओं को महाराज कह कर संबोधित करने का एक प्रचलन है। यह पहला काल्पनिक वृत्तांत है जिसमें श्री साँई बाबा के जन्म और पूर्ववृत्त का वर्णन किया गया है। विवरित तथ्यों को प्रमाणित करने के साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। स्वयं दास गणु महाराज ने इसका बाद में खुलासा किया था। 'भक्त लीलामृत' के ३१वें अध्याय में वे कहते हैं, "कोइ भी उनके पूर्ववृत्त तथा पूर्व इतिहास को नहीं जानता। जब मैं दूसरों जैसा ही अज्ञ हूँ, मैं इस वृत्तांत के विषय में कैसे व्याख्या कर सकता हूँ? यदि बाबा से यह प्रश्न कोई करता तो उनका उत्तर होता, 'जैसे आकाश में मेघ फट कर गर्जन होने के पश्चात वर्षा होती है, ठीक उसी तरह मेरा भी धर्ती पर पात हुआ है। मेरा न तो कोई नाम है और न ही

स्थान। मेरे कोई गुण नहीं है। इस शरीर को धारण उस कर्म के फलस्वरुप किया है, जो कि अ�ग और अटल है। सर्वत्र मुझे शरीर से पहचाना जाता है। समस्त विश्व ही मेरा निवासस्थान है। ब्रह्म मेरे पिता हैं - अभेद्य माया मेरी माँ। उनके मिलने से ही मुझे यह शरीर मिला जो तुम देख पाते हो।'"

बाद में अपने काव्य प्रतिभा से प्रेरित होकर १९२५ में यानी बाबा के महासमाधी के ७ वर्ष पश्चात अपनी गाथाओं में और अधिक रस भरने के लिये 'भक्त लीलामृत' में सेलु की कहानी जोड़ी गई। यह वृत्तांत या अध्याय मस्जिद में साँई बाबा के समक्ष पोथी जैसे नहीं पढ़ी गई थी।

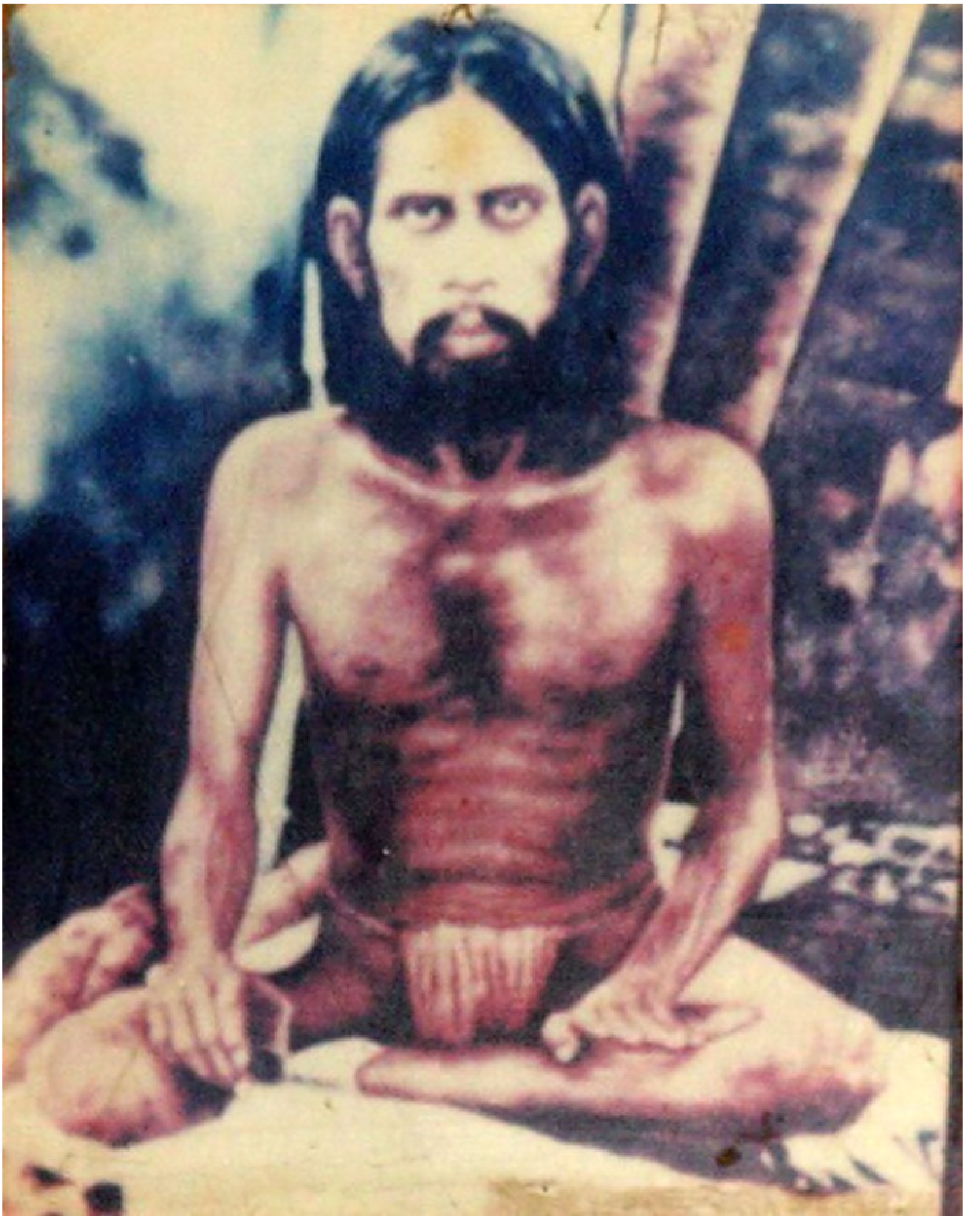

अध्याय छः

परिचय

श्री गणेश की जयजयकार हो! विश्वमण्ल के सर्वश्रेष्ठ! हे अनंत! हे ब्रह्म! हे सर्वशक्तिमान! हे उस माया से महान जो अन्य स्तरीय देवताओं को विनम्र कर देती हैं! हे पांुरंगा! तुम्हारी जय हो! सभी शास्त्र, आप जो कि समस्त विश्वब्रह्मां के स्वामी हैं, का गुणगान करते हैं। हे प्राचीनतम! इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपके लिये असम्भव हो। वेद आपकी ब्रह्म के रूप में जयजयकार करते हैं। मुसलमान आपको अल्लाह-इ-ल्लाही के रूप में। जैन आपको अरिहंत के रूप में पूजते हैं। पर आप तो यह सभी हैं। आप वह हैं जिनका ध्येय है समस्त लोकों को मोक्ष प्राप्त करवाना! आप विश्व ब्रह्माण के स्वामी हैं! अपने भक्तों की ख़ातिर आपने पांुरंग का रूप धारण कर एक ईंट पर खड़ा होना स्वीकारा है। मैं पंढरीनाथ के चरणों पर अपने आप को समर्पन करता हूँ और ऊनसे भीक्षा माँगता हूँ कि वे मेरी रक्षा करें। हे पुण्यात्माओं के संकटमोचक! आप जो दुर्बल और विनीतों के मित्र हैं, हम सब का जीवन के उतार चढ़ाव से रक्षा करें। प्रिय श्रोताओं कृपया मेरी इस नयी गाथा को सुनने की मेरी प्रार्थना सुनें। केवल जिनके नाम को सुनने से हमारे सारे पाप भस्म हो जाते हैं, जिनके नाम को मात्र सुनने से हमारा मन सांसारिक वस्तुओं को छोड़ आध्यात्म की ओर खिंचा चला जाता है - मैं उन महात्मा की कहानियाँ सुनाने जा रहा हूँ - अद्वितीय साँई बाबा की। महात्माओं का इतिहास सर्वश्रेष्ठ शुद्धता और सर्वश्रेष्ठ शक्ति का होता है। वे हमें वैकुंठ की ओर जाने के पड़ावों को दर्शाते हैं, वह वैकुंठ जहाँ विश्व के स्वामी श्री विष्णु का निवास है।

केवल सुनने मात्र से महात्माओं के नाम हमारे मन को स्थिर कर देता है और नेक पथ पर घुमा देता है। शिरडी में एक बहुत महान महात्मा का आगमन हुआ था। क्या उनका जन्म उस गाँव में हुआ था? उनका पूर्ववृत्त क्या था? इस अध्याय में मैं इन सभी प्रश्नों का विस्तृत विवरण दूँगा।

चदुभाई पटेल का घाड़ा

श्री साँई बाबा, शुक, वशिष्ट और जैमिनि जैसे एक बहुत बड़े महात्मा थे। अपने गुरु का कहा मानते हुए उन्होंने सेलु छोड़ा और पश्चिम की ओर यात्रा की। वे पड़ावों में यात्रा करते रहे और औरंगाबाद क्षेत्र पहुँचे। वहाँ उन्हें अपने मन के अनुसार अरण्यों में एक स्थान मिला जहाँ वे रुके। यह क्षेत्र पूर्व में यादव राजाओं द्वारा शासित था। यह स्थान दौलताबाद (देवगिरि), जहाँ जनार्धन स्वामी, एकनाथ महाराज के गुरु, कभी रहा करते थे, के निकट था। श्री साँई बाबा वहाँ वैराग्य के भाव से वास कर रहे थे। ब्रहम के साथ अविरल ऐक्य भाव के अतुलनीय परमानंद के रस में दिवा-रात्री वे डूबे हुए थे।

ऐसे में एक दिन एक मुसलमान जिसका नाम चंदुभाई था, अपने खोये हुए घोड़े को खोजता हुआ उसी जंगल में आया। वे अनाथों की माँ जैसे श्री साँई बाबा को उस घने जंगल के एक वृक्ष के छाएँ में अकेले विराजते देख चकित रह गया। उसने मन ही मन सोचा, "यह कोई साधारण व्यक्ति तो लगते नहीं हैं। अवश्य ही ये कोई ऐश्वरीय आत्मा होंगे या फिर कोई दुरात्मा या शैतान। ऐसा नहीं, तो क्यों इस घने जंगल में जहाँ कोई भी चलता फिरता नहीं हो और जहाँ मनुष्य यदि परिस्थितिवश बाध्य न हो तो अकेले पदार्पण करते हुए डरता हो, वे अकेले ही आनंदमय हो विरक्त भाव से विराजते हैं? मैं उन्हें स्पष्ट देख पा रहा हूँ। अब मैं क्या करूँ?

क्या मैं यहाँ से भाग जाऊँ? या फिर अपने घोड़े को ढूंढूँ? मैं क्या करूँ?" यह सब चिंताएँ उसके दीमाग में दौड़ती रहीं। उसने सोचा कि विवेकीय निर्णय वीरता से अधिक लाभदायक होता है और वह भागने के लिये उठ खड़ा हुआ। बाबा के स्वर ने उसे रोक लिया। "मेरे भाई! मैं न तो शैतान हूँ, न ही दुरात्मा और न ही कोई ऐश्वरीय आत्मा। मैं तो एक दरिद्र फ़कीर हूँ जो इन जंगलों में वास करता है। डरो मत। अपने मन में कोई आशंका मत रखो। यहाँ आओ और इस चिलम का एक फूंक लो", बाबा ने कहा।

बाबा के बोलते स्वर को सुनकर चंदुभाई के मन में शांति आई। वह धीरे धीरे बाबा के निकट गया और बैठ गया। बाबा चिलम पीने की तैयारी कर रहे थे। चंदुभाई ने उनसे चिलम ली और तंबाकू के पत्तों को पीस कर, चिलम को ठसाठस भर दिया। उसने कहा, "हे साँई! मैंने चिलम को भरकर तैयार कर दिया है। परंतु यहाँ अग्नि नहीं है। मैं अपने चकमक पत्थर घर छोड़ आया हूँ। अब हम क्या करें?" चंदुभाई को सुनकर बाबा हंस पड़े। वे बोले, "चंदुभाई तुम्हारी आँखें तथा तुम्हारा मन सांसारिक वस्तुओं में उलझा हुआ है। अग्नि तो सारे पृथ्वी का आधार व नींव है। वह तो समस्त ब्रह्मांड में फैला हुआ है। क्यों तुम कोस रहे हो कि अग्नि नहीं है?" बाबा ने अपना सटका, जो हमेशा उनके पास रहता था, उठाया और ज़मीन पर दे मारा। तुरंत वहाँ अग्नि उत्पन्न हो गया। बाबा ने एक टहनी उठाई और उस अग्नि स्थल पर रख कर उस जलती हुई टहनी से चिलम को जलाया। उन्होंने चिलम को जलाने के पश्चात एक कश लेकर टहनी को फैंक दिया। बाबा की अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन देख, चंदुभाई चकित रह गया। उसने तुरंत अपना सर उनके चरणों में भक्ति और श्रद्धा सहित रख दिया। उसने कहा, "महाराज, आपकी शक्ति अपरंपार है। आप पैग़ंबर के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। यह मेरे पिछले जन्मों की संचित उपलब्धियाँ हैं जिनके

कारण आपके दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। चार दिन से बिना भोजन किये मैं अपने घोड़े को ढूंढ रहा हूँ, जो कि मुझसे खो गया है। वह एक अच्छे नसल का तुरकी घोड़ा है। उसका चाल ढाल अति सुंदर है। वह चरने गया और रासता भटक गया। उस घोड़े के खो जाने के पश्चात मेरी खाने की इच्छा नहीं रही। मैंने कई बार पूरे जंगल को ढूंढा है परंतु उसे खोज नहीं पाया। यह चिलम भी मुझे रुचिकर प्रतीत नहीं होगा, यदि मैं घोड़े को नहीं ढूंढ पाऊँ।" साँई बाबा बोले, "इतनी छोटी सी चीज़ के लिये इतने क्यों चिंतित हो? उस झाड़ी के पीछे जाकर देखो। तुम अपने घोड़े को घास चरते हुए पाओगे। घोड़े के लिये इतनी चिंता मत करो। यह व्यवहार हर उस व्यक्ति का है जो केवल सांसारिक वस्तुओं के विषय में सोचता हैं। यदि बच्चा खो जाये वे उसको हर जगह रोते बिलखते ढूंढते रहते हैं। यदि किसी की पत्नी छोड़कर चली जाये, वे अपना माथा पकड़कर सिसकियाँ लेते हैं और रोते हैं। यदि घर में चोरी हो जाये या फिर घर को आग लग जाये, वे छाती पीटते हैं और क्रंदन करते हैं यह कह कर कि संसार में वे सबसे भाग्यहीन व्यक्ति हैं। अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत? अरे पागल! उस माया को देखो जो सर्वस्थान पर विराजती है। उस अल्लाह-ई-ल्लाही को हमेशा याद रखो जो हमारी रक्षा करते हैं और हमारा पोषण भी करते हैं। इस संसार के वे ही नींव और आधार हैं। वे ही हर खुशी के भंडार हैं। वे ही सत्य हैं। यदि तुम उन्हें नहीं ढूंढते हो तो प्रसन्नता, पीड़ा, अथवा लाभ और क्षति तुम्हारे लिये वांछनीय होगा। कुछ भी हो पीड़ा बिन प्रसन्नता का कोई मूल्य नहीं। जो ग्रीष्म के मध्य की गर्मी को सह रहा हो उस व्यक्ति के लिये वृष्टि की सोच मधुरतम होगी। अत: पीड़ा भी उतना ही वांछनीय है ताकि प्रसन्नता का मूल्य समझा जाए। तुम चिंतित होकर मात्र एक घोड़े के खो जाने से अपना

छाती पीट रहे हो, परंतु एक क्षण भी उस सर्वशक्तिमान ईश्वर के बारे में नहीं सोच रहे हो। अपने व्यवहार पर थोड़ा चिंतन करो। यह कितना घिनौना है कि तुम ईश्वर को कोई मूल्य न देकर एक घोड़े को इतना दे रहे हो?" चंदुभाई ने श्री साँई बाबा की बातों को सुना और लज्जा से अपने सर को झुका लिया। "हे बलधारी! आप तो सभी प्रकार के ज्ञान के साकार रूप हैं। यह सब जानने की क्षमता मुझ तुच्छ अज्ञानी में कैसे हो सकती है?" उसने घोड़े को देखा और उसे पकड़ने को दौड़ा। जैसे एक पति अपनी पत्नी के बहुत समय बाद लौटने की सूचना पाकर प्रसन्न होता है, ठीक उसी तरह चंदुभाई अपने घोड़े को इतने दिन पश्चात देख कर उल्हासित हो उठा। वह एक हाथ में घोड़े को पकड़कर श्री साँई बाबा के समीप आया। वह बोला, "बाबा! मेरी बुग्गी में बैठिये और मेरे साथ मेरे घर आइये। मेरा गृहस्त और मैं, आपके आने पर धन्य हो जायेंगे।" बाबा मुस्कुराये और बोले, "मेरे पुत्र, मुझ ग़रीब फ़कीर को बुग्गी और घोड़े से क्या काम? आज तो मैं तुम्हारे घर जा ही नहीं सकता। देखते हैं, सम्भवत: कल या परसों आ जाऊँ। मुझे निरर्थक आज जाने के लिये ज़बरदस्ती मत करो।" चंदुभाई ने बाबा के चरणस्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया और घोड़े की सवारी करते हुए, घोड़े के मिल जाने की प्रसन्नता सहित घर चला गया। उसके सभी निकटतम मित्र इस बात से बहुत खुश हुए कि उसे घोड़ा वापस मिल गया। उन सभी ने उससे प्रश्न किया कि घोड़ा उसे कैसे वापस मिला। चंदुभाई ने उत्तर दिया, "जंगल में मुझे एक महान औलिआ मिल गये। उनके पास अनेक शक्तियाँ थीं। यह केवल उनकी कृपा थी जो मुझे घोड़ा मिल गया। उन्होंने ज़मीन पर सटका मारा और वहाँ अग्नि उत्पन्न हो गया। वे महान योग्यता रखने वाले महात्मा ने कल हमारे निवास पर आने का आश्वासन

दिया है। यह अल्लह की असीम कृपा है कि मुझे उस महागुणी के दर्शन प्राप्त हुए।"

शिर्डी में आगमन

हे श्रोताओं! दूसरे दिन श्री साँई बाबा धूपखेड़ा गाँव में चंदुभाई के घर पहुँचे। धूपखेड़ा के सभी निवासी ने साँई बाबा के दर्शन उपलब्ध किया। वे विस्मित थे, "क्या ये हिंदू हैं? क्या ये मुसलमान हैं?" जिस किसी ने भी उन्हें देखा उसने उनके धर्म के बारे में अपनी ही धारणा बना ली। मुसलमानों ने सोचा वे एक औलिया हैं। हिंदूओं ने समझा वे एक सिद्ध हैं। दोनों सम्प्रदायों में बाबा के प्रति एक समान भाव उत्पन्न हुआ - और वह थी भक्ति। उन सब ने उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम किया और अपनी श्रद्धा अर्पित की।

चंदुभाई के साले का विवाह शिर्डी गाँव की एक लड़की से तय हुआ था। बाबा भी धूपखेड़ा गाँव से शिर्डी जाने वाले बारात में शामिल हो गये। जैसे उन्होंने उस शिर्डी की माटी पर अपने पाँव रखे, वह गाँव कृतार्थ हुआ। शिर्डी वाक़ई में गोकुल जैसा था। कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ था पर वे गोकुल में रहते थे। ठीक उसी तरह, सेलु या मनावत मथुरा जैसे हुए और शिर्डी गोकुल जैसे। श्री साँई बाबा ने शिर्डी में निवास कर उसकी शुद्धीकरण की और अब वह एक महान तीर्थ स्थान बन गया है। जैसे ही उन्होंने शिर्डी में आगमन किया उनका सक्षातकार पवित्र भक्त म्हाल्सपती से हुआ। जैसे वे खांडोबा मंदिर के पास पहुंचे, म्हाल्सपती बोले, "हे साँई! आपका यहाँ आना स्वाभाविक नहीं लगता है। यह हिन्दुओं का मंदिर है। आप मुझे मुसलमान प्रतीत होते हैं। बेहतर होगा कि आप मस्जिद या ठाकिया जाएँ।"

सर्वसक्षम साँई म्हाल्सपती के शब्दों से चकित रह गये। वे बोले, "वे केवल एक भगवान हैं जिन्होंने इन दोनो समुदायों के लोगों को बनाया है। हिंदू और मुसलमान केवल शब्द मात्र हैं - इसे सत्य जानो। एक साधक को कभी भी यह ऐहसास नहीं होता है कि धर्मनीति का कोई महत्व है। उसे कभी भी धर्म के आधार पर भिन्नता नहीं देखनी चाहिये। दूसरे धर्म के लोगों के प्रति कभी भी असहिष्णुता नहीं अपनानी चाहिये। अपने आप को सुधारो। उस भगवान को देखने की चेष्टा करो जो सब के लिये एक हैं। वही अल्लाह-ई-ल्लाही हैं और वही आदिशेष पर लेटे हुए महाविष्णु हैं। तुम्हारे खां□ोबा रहित कुछ है ही नहीं, मेरे पुत्र। स्पष्ट रूप से पहचानो कि सत्य में खां□ोबा हैं कौन? जिन्हें सत्य का ज्ञान है वे इन धर्म के आधार पर बने हुए पृथकता का बिंदु मात्र ग्राह्य नहीं करते हैं। इस दुनिया में मंदिर भी हैं और मस्जिद भी। स्वयं भगवान ने किसी का भी निर्माण नहीं किया है। हे पवित्र पुरुष! यह मत समझो कि केवल यह मंदिर या मस्जिद ही भगवान तक जाने के रास्ते हैं। मैं आपको परेशान नहीं करूंगा। आपकी भावनाओं को आघात न पहुँचाकर मैं खां□ोबा के दर्शन दूर से ही कर लूंगा। मुझे आशा है कि आपको इस पर आपत्ति नहीं होगी? आपके पुराण एक कथा का वर्णन करते हैं। एक निम्न जाति का व्यक्ति हुआ करता था जिसका नाम चोखा मेला था और जो पां□ुरंग का अति प्रिय था। जो ब्राहमण विधि विधान से नित्य पां□ुरंग की सेवा अर्चना किया करते थे उनसे वह सौ गुणा अच्छा व्यक्ति था। यह जान लो कि ईश्वर के चरण कमलों तक पहुंचने के लिये जो इमानदारी से अपने मन और हृदय को शुद्ध रखते हैं वे ही उच्य जाति के व्यक्ति होते हैं। शेष सभी निम्न जाति के होते हैं चाहे वे किसी भी जाति में क्यों न जन्में हों। जिसका अंतर शुद्ध वह सर्वत्र शुद्ध होता है।"

श्री साँई बाबा से ज्ञान की यह बातें सुनकर म्हाल्सपती आनंद विभोर हो उठ, गद गद हो गये। उसने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया। उसने कहा, "आप सत्य में ज्ञान के साकार रूप हैं। यह मेरी पिछले जन्मों का संचित गुण हैं जिसके कारण मैं आपकी ओर अग्रसर हो गया।" उसने प्रार्थना की, "कृपा करके हमारे शिरडी गाँव में रह जाइये।" बाबा ऐसा करने के लिये सहमत हुए। उन दोनों ने गाँव में पदार्पण किया। श्री साँई बाबा मस्जिद में बस गये। उन्होंने कई दिन नीम के वृक्ष की छाया में व्यतीत किये, जो कि पास ही में था। वे अकेले रहना पसंद करते थे। वे धूनी जलाकर अपनी कोनी को दाहिने घुटने पर रख अपने हाथ को कान पर रखकर अर्ध चक्षु बंद किये घंटों प्रज्वलित अग्नि की ओर तकते रहते थे। वे चिलम पीते थे। वे कभी भी शीघ्रता में नहीं होते थे। वे सर्वदा अंतर्वेक्षण (अपने अंदर झाँकते) करते थे और उनका मन स्थिर रहता था। सर्वदा ईश्वर के साथ संचार के परमानंद में वास करते थे। पाँच गृहस्तियों के यहाँ जाकर नित्य भीक्षा माँगा करते थे। वे भीक्षा माँगकर कुछ ही समय वहाँ ठहरते थे। वे, वामन, सखाराम, गणपती, कुमार, तात्याबा, नंदु और सवाईराम के घरों में जाकर भीक्षा माँगा करते थे। वे कितने भाग्यशाली थे जिन्हें उस ज्ञान के साकार रूप को भीक्षा देने का श्रेय मिला?

निरासक्ति (आसक्ति विहीन)

एक दिन देविदास नामक एक गोसाँई ने बाबा से आग्रह किया कि वे उन्हें निरासक्ति एवम सभी कामनाओं से मुक्ति के बारे में शिक्षा दें। बाबा ने कहा, "निरासक्ति के मार्ग में सब से भयाव: वस्तु है स्त्री और कामुकता

की दुर्बलता। महर्षि विश्वामित्र की दुरावस्था पर ध्यान दो जो कि उनकी कामुकता की दुर्बलता से उत्पन्न हुई। यदि कोई अपना परिवार भी त्याग दे और दूर कहीं भी चला जाए, उसे अपनी कामुकता की दुर्बलता का ध्यान रखना चाहिये। जिन्हें □ींगे मारने का स्वभाव हो और जो दिखावा करने की आदत □ाल चुके हों उन्हें आसक्ति से कभी छुटकारा नहीं मिल सकता। प्रत्येक व्यक्ति को अंतर्वेक्षण कर स्वयंभू का आनंद लेना चाहिये और सर्वदा ईश्वर के ध्यान में लीन होना चाहिये। अहंकार का विनाश कर देना चाहिये।"

नीम का वृक्ष

अब हम यह देखेंगे कि यह श्रद्धेय संत कैसे उस भाग्यशाली नीम वृक्ष के छाँए में अपना समय व्यतीत करते थे। यह पवित्र कथा हमें मोक्ष की ओर ले जायेगी। बाबा नीम वृक्ष के तले काफ़ी समय तक रहे। उनके निवास में कोई दीवार नहीं था। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण ही उनके निवास के दीवार थे। नीम वृक्ष से गिरे हुए पत्ते ही उनका आसन था। उनके निवास इसी प्रकृति का था। राजा भर्त्रहरी ने एक बार निरासक्त के निवास का वर्णन किया था। श्री साँई बाबा का शिर□ी में उसी तरह का निवास था। परमेश्वर, समस्त संसार को बचाने के लिये अवतरित हुए थे। सारा संसार ही उनका परिवार था। पर उनका परिवार एक अत्यंत अनोखेपन से आकृष्ट था। यह एक अलग ही क़िस्म का परिवार था। उस परिवार के सदस्य कभी भी दिखायी नहीं देते थे। परंतु यदि हम ध्यानपूर्वक सोचें तो यह कहना उचित नहीं होगा कि बाबा अकेले थे। साहस उनके पिता हैं, क्षमा उनकी माता। शांति उनकी पत्नी। दया उनकी भगिनी। सत्य चिंतन उनके

भ्राता। वे इस धर्ती को अपना बिछौना बनाकर सर्वदा अपने स्वयं से ही आदान प्रदान के आनंद में डूबे रहते थे। गौतम बुद्ध जैसे वे सर्वदा ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते थे। चहूँ ओर वायु मंडल उनका शौल बने विराजे हुए था । भगवान के निपुण हाथों से गढ़ा हुआ उस शौल में आकाश के चमकते तारों से कढ़ाई किया हुआ था। वे सर्वदा ही ब्रह्म ज्ञान के अमृत का पान किया करते रहते थे। ज्ञान और निरासक्ति ही उनके निवास तक दो पड़ाव थे। श्रेष्ठतम आचार के कवच से वे कमर तक लिपटे हुए थे और संयम के प्रति प्रेम के शौल को ओढ़े हुए थे। केवल वे ही जिन्हें यह अनुभूति हो चुकी थी कि बाबा का घर ही चिरस्थायी हित और मोक्ष के द्वार है, उनके मंत्री बन सके। कोई भी चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसे अस्थायी रूप से उनके समक्ष धैर्य सहित हाथ जोड़े याचना करते हुए खड़े रहना पड़ता था। साँई ऐसे सम्राट थे। योगियों में सबसे महान योगी थे वे। महात्माओं के बीच इन सम्राट का नाम यदि कोई केवल उल्लेख ही करता, तो भय और अहंकार कोसों दूर भाग जाते थे। जैसे अंधकार सूर्य को देखते ही भय से पलायन करता है, उसी तरह पापयुक्त कर्म उन्हें देख दक्षिण में अधोलोक की ओर भाग जाते हैं। अहंकार की ही पत्नी कांटे की त्वचा वाली बनावट है। यह युगल जोड़ी तभी भाग गयी जब उन्होंने उस अतुलनीय संत महाराज को देखा। जैसे कुत्ता सिंघ को देखकर भाग जाता है, उसी तरह काम ने उसके मित्रों सहित, जैसे दुराचार इत्यादि, पलायन किया। इस समाचार को लोगों के सुनने से पूर्व ही, जैसे भूंसा अग्नि के समक्ष रुक नहीं सकता, वह छः शत्रु - वासना, क्रोध, लोभ, भ्रम, अहंकार तथा ईर्ष्या ने पलायन किया। कृपणता न तो नम्रता से परिचित है और न ही लज्जा से। यह एक बहुत भयानक अवगुण है। यदि हम खांडोबा मंदिर में बैठ कर ध्यान लगाना चाहते हों, अहंकार पहले से ही वहाँ बैठने

के लिये तय्यार रहता है। परंतु खां□ोबा एक उतने ही वैभवशाली व्यिक्तत्व हैं जैसे कि शिव। वे एक लात मार कर सभी उन विषैले लोगों को भगा देंगे। संतों में महान उस अतुलनीय सम्राट को देख, बुद्धि उस प्रेत का त्याग कर सर मुं□वा कर एक विधवा जैसी शांत बैठ गई। अपरिमित सुखवाद उसीका बेटा है। उसने अपनी विधवा माँ को देखा और बाबा और उनके नीम वृक्ष से कोसों दूर लक्ष्यहीन घूम रहा था। अंतत: उसने भी अनुभव किया कि इसका कोई लाभ नहीं और अपनी बहन लालसा सहित दूर भाग लिया। बुरी प्रवृत्तिया उसकी दूसरी बहन थी। वह क्रोध की घंटी बजाती हुई आई पर जब उसने देखा कि उसका कोई भी साथी वहाँ नहीं है तो वह भी भाग खड़ी हुई। मोक्ष के छ: शत्रुओं ने उनका नेतृत्व करने वाले अनैतिक आचार और माया को साथ लिया और अपने प्राणों को ऐसे बचाते हुए वहाँ से दक्षिण की ओर अधोलोक की दिशा में भाग निकले ताकि योगी महाराज को उनकी छाया तक नज़र न आये क्योंकि उन्हें □र था कि यदि वे एक बार उन्हें देख लें, तब वे उनका विनाश कर □ालेंगे और उनके घातक प्रभावों को इस संसार से सदा के लिये नष्ट कर देंगे। अधोलोक में वास करने वाला सुअर उस स्थान से घृणा करता है जहाँ पवित्रता हो; वह अपने मल वाला ख़ुराक़ वहाँ ले जाता है जो प्रदूषित हो और वहाँ घर जैसा महसूस कर उस मल का भोजन करता है। सभी दुष्ट, पापिष्ठ, दुराचार, मानवता को आकृष्ट करने वाले रोग, उस अतुलनीय संत, संतों के सम्राट - श्री साँई बाबा के भव्य प्रतिभा के अस्तित्व के प्रभाव से वहाँ टिक नहीं पाए और सदाचार, पवित्रता और ज्ञान प्रतिष्ठित हुए।

'शिव लीलामृत' पुस्तक में बताया गया है कि राजा दशार्ण का पाप कैसे उन्हें छोड़ जाता हैं और कैसे कौवा बन कर उड़ जाता है। उसी तरह उन

लोगों के अवगुण उन्हें छोड़कर दक्षिण की ओर अधोलोक की दिशा में भागने लगे, जब वे श्री साँई बाबा की पवित्र कथाओं का श्रवन किया। दक्षिण में ही मृत्यु के देव यम का वास है और वे स्थान जहाँ पूर्वजों का भी वास है। इसी कारण कृपणता, दिखावा और दुराचार उस दिशा में रहते हैं। मैं असम्पन्न शिक्षा का एक निर्धन व्यक्ति हूँ। श्री साँई बाबा की सांसारिक विषय वस्तुओं के प्रति विरक्ति का वर्णन करने में असमर्थ ठहरा। बाह्य दृष्टि से वे एक साधारण मनुष्य दिखते हैं। पर वे ज्ञान के शुद्ध साकार रूप हैं।

गंगागीर

यदि मैं उनको दरिद्र कहने का निर्णय लूँ, यह उन्हें जचता नहीं है, क्योंकि लक्ष्मी, ऐश्वर्य की देवी उनके द्वार के चौखट पर खड़ी रहती हैं। यदि मैं उन्हें धनी कहने का निर्णय लेता हूँ, तो वह भी उन्हें जचता नहीं है क्योंके वे तो हर रोज़ घर घर भीक्षा माँग कर अपना पेट भरते हैं।
ऐसे में एक दिन जब साँई महाराज पौधों को पानी देने के लिये कूँए से जल ला रहे थे, गंगागीरबुआ वहाँ से गुज़र रहे थे और उनका आमना सामना हुआ। गंगागीर एक साधु थे। वे एक ऐसे संन्यासी थे जो कि सत्य में एक संत भी थे। यद्यपि वे वरकड़ी पंथ के थे, वे शैव पंथ के रुद्राक्ष को धारण कीये हुए थे। वरकड़ी, शिव के प्रिय रुद्राक्ष को सम्मान नहीं देते हैं। उनके पाठ्यक्रम में 'दसबोध' शामिल नहीं है। गंगागीर के पास धार्मिक असहिष्णुता और जातिवाद से उत्पन्न कट्टरपन के लिये कोई स्थान नहीं था। वे ज्ञान के साकार रूप थे। ऐसे महान व्यक्ति गंगागीर ने शिरडी के लोगों को श्री साँई बाबा के बारे में बताया, "आप लोग क्यों नहीं समझते

हैं? आप लोग इस मणि को छोड़ क्यों दूसरे साधुओं का पीछा करते हैं? क्या ऐसा मूर्ख कोई होगा जो अपने घर मिठाईयों के ढेर छोड़ कर घर घर भीक्षा माँगने दौड़े? ऐसा कोई भी एक मूर्ख होगा जो पवित्र गंगा किनारे जाकर भी वहाँ न नहाए? आपके पास एक अतुलनीय, अमूल्य साँई बाबा जैसा हीरा है, फिर भी आप लोग दूसरी जगह संतों के खोज में जाते हैं। आध्यात्म के आकाश में ये साँई बाबा सूर्य जैसे हैं। पर्वतों में वे हिमालय हैं। ये वह चमकता हुआ हीरा हैं जो महात्माओं के मुख्य कहलाने के योग्य हैं। आप गाँव वालों को यह न जानकर बहुत बड़ी क्षति हो रही है और इस महान आत्मा के प्रति आतिथ्य में त्रुटि व्यक्त हो रही है। जहाँ साँई महाराज हों क्या वहाँ दुख क्षण भर के लिये भी टिक सकता है? उनकी अच्छी तरह सेवा करिये और इस संसार की सारी भलाई उपलब्ध करिये और इससे अगले के भी। यदि आप उन अतुलनीय व्यक्ति की अच्छी सेवा उनके तृप्त होने के लिये नहीं करते हैं, आपकी दुखों का कोई अंत नहीं होगा।" गंगागीर ने शिर�ी के वासियों को यह ज्ञानपूर्ण परामर्श दिया और मस्जिद चले गए। उन्होंने श्री साँई बाबा का दर्शन किया और आनंदित हो उठे।

उनका भेंट ऐसे हुआ जैसे गंगा और गोदावरी का मिलन हो, जैसे रमा के स्वामी विष्णु का भेंट उमा के स्वामी शिव से हुआ हो; जैसे गौतम ऋषि वशिष्ट ऋषि से मिल रहे हों; जैसे कि इंद्र देवों के मुख्य, धन के देव कुबेर से मिल रहे हों। वे दोनो एक दूसरे के साणिध्य में बहुत अनंदित रहते थे।

जैसे ही गंगागीर मस्जिद पहुँचे बाबा मुस्कुराये, "तो आज मंदिर, मस्जिद चला आया है, बहुत अच्छे।" पूरे शिष्टाचार सहित उन्होंने उन्हें मस्जिद में अमंत्रित किया। जब गंगागीर बैठ गए तब बाबा ने कहा, "हम दोनो

एक ही परिवार के हैं। हम लोग अनंदमय हो ईश्वर के साथ वैकुंठ में रहते थे। हरि ने हमें दुराचार की विफलता के बारे में लोगों को विश्वास दिलाने और उन्हें सही मार्ग पर लाने के लिये भेजा है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि लोग एक इंच भी परिवर्तित नहीं होवेंगे आज कल। जहाँ भी जाओ मदिरा के □रे पर भीड़ लगी रहती है। चाउड़ी में नाचने के लिये फालगुन के माह में वैश्याओं को बुलवाया जाता है। जैसे घोड़ा लगाम से छूटकर भाग जाता है, उसी तरह सभी वर्गों के लोग अपना कार्य को थमाकर भागते रहते हैं, बिना यह ग्राहय किये कि वे उस वैश्या का नृत्य देखने हेतु उचित आवरण पहने हैं या नहीं। यहाँ ये सब अशलील व्यवहार होता है। वे एक दूसरे पर लाल रंग इस तरह लगाते हैं जैसे कि कोई त्यौहार हो और उच्य ध्वनि में संगीत बजाकर नाचते गाते हैं। इस युग में हरि ने हमें दूध से भरे हुए बर्तन हमारे माथे पर रख कर भेजा है और हमें आदेश दिया है कि हम लोगों को इस दूध को पीने हेतु विश्वास दिलायें। पर जो भी मुझे देखता है वह उपहास करते हुए हंसता है और उस दूध से भरे हुए बर्तन पर पत्थर मारता है। कुछ तो शैतानी चेहरा बना मुझ पर हँसते हैं। कुछ मेरे लिये भेंट लाते हैं। कुछ कहते हैं, 'अब मुझमें साँई फ़कीर की आत्मा है, अत: (क्योंकि उनके पास अब कोई शक्ति नहीं है) मेरी सुनो। आओ और मेरे ज्ञान के वचन को सुनो - अपने हृदय की तृप्ति प्राप्त करने तक मदिरा पान करो। जितना पीना चहते हो पियो और खुशियाँ मनाओ।' जैसे ही उन्हें मदिरा का नाम सुनाई पड़ता है अधिकतर लोग वहाँ दौड़कर चले जाते हैं। अधिक लोग मदिरा के बजाय दूध पीना पसंद नहीं करते हैं। कुछ ही लोग मेरे पास आए हैं और दूध पीया है। और इन में से कुछ को वेदांत का पागलपन सवार है। अतयेव जिन लोगों ने मेरे पास से दूध पीया है, दुनिया ने उन्हें पागल क़रार दिया है। जिन लोगों

को मदिरा की लथ लग चुकी हो उनकी प्रवृत्ति ही ऐसी होती है। देखो वे कैसे कहकहा लगा रहे हैं, 'मदिरा महाराज की सब जय बोलो'। यह संसार एक विचित्र स्थान है। मैं उन्हें अमृत पिलाना चाहता हूँ, वे विष चुनते हैं। वे सत्य के प्रति सम्मान देना और आस्था खो रहे हैं। वे सत्य के बजाय मिथ्या को प्राथमिकता दे रहे हैं।"

गंगागीर ने बाबा की कही हुई बात सुनी. उन्होंने कहा, "महाराज, मेरा भी वही अनुभव है जो आपका है। मैंने कुछ ही लोगों को सत्य मार्ग पर अग्रसर होने के लिये ज़ोर दिया परंतु मैं विफल रहा। उन लोगों ने यह निर्णय लिया है कि मैं एक पागल हूँ और मैं जो कहता हूँ उसकी अनसुनी कर देते हैं। मैंने यह होते देखा है और इस लिये मैंने लोगों को परिवर्तित करने की चेष्टा छोड़ दी है।" बाबा ने गंगागीर के इस निराश भरे स्वर की बातें सुनी, जो जीवन भर की भर्त्सना और अस्वीकृति से भरी हुई थीं। बाबा दुखी हो गये। उन्होंने कहा, "जो चले जायेंगे वे विनाश की ओर जायेंगे। जो हमारे साथ रहेंगे वे हमारे ही साथ रहेंगे। हमे प्रतिदान की इच्छा के बिना ही उन सब की सहायता करनी चाहिये जो हमारे पास ईमानदारी से आते हैं।"

उन्होंने और भी कई सारे विषयों पर चर्चा की। यदि मैं उन सारे विषयों को यहाँ उधृत करूँ तो यह पोथी महाभारत जैसे विशाल पुस्तक हो जयेगी। कुछ देर पश्चात गंगागीर ने बाबा से आज्ञा मांगी और मस्जिद से प्रस्थान किया। बाबा वहीँ एक चित्त हो बैठे रहे।

देखिये बाबा ने किस तरह इतने स्पष्ट और सहजता से इस कलि युग में होने वाली आज की परिस्थिति का वर्णन किया है! बाबा ने इस कलि युग की तुलना फालगुन माह से की है। मदिरा का उल्लेख उन्होंने बुरी

आदतों और बुरे कर्मों के प्रति झुकाव के संदर्भ में किया है। धर्म और ज्ञान का सत्य मर्ग वह दूध है जो वे हमें देना चाहते हैं।
साँई महारज की शिक्षा देने की पद्धति अद्वितीय और प्राणपोषक थी। वे तथ्य समझाने का योग्य मैं नहीं। बाबा अनायास ही कुछ बोल जाते हैं और जिज्ञासु के मन की जिज्ञासा क्षण में ही मिट जाती है। किसी के पास उनके जैसे प्रज्ञता प्रदान करने की और सच्चे ज्ञान को समझाने की क्षमता नहीं है।

बाबा के लिये एक नारियल

जब ऐसा चल रहा था, तब महान महात्मा श्री वासुदेवानंद सरस्वती (तेम्ब्ये स्वामी), राजामहेंद्रवरम में पवित्र गोदावरी के किनारे निवास कर रहे थे। वे देश के जगह जगह घूम रहे थे और लोगों को सत कर्म के सही मार्ग की शिक्षा दे रहे थे। वे एक महान विद्वान थे।
उनके आगमन से ऋगवेद सम्मानपूर्वक उठ खड़े हो जाते थे। उनका ज्ञान एक बहुत लंबी अवधी के अनुभव पर आधारित था न कि केवल पुस्तकों से। वे एक आत्म-बोधी पुरुष थे। किसी को उनके ज्ञान को उजागर करने की अथवा शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं थी। नांदेड़ के पुं लीक राव और अन्य उनके दर्शन के लिये राजामहेंद्रवरम पहुँचे। राजामहेंद्रवरम (राजामंढरी) गोदावरी के किनारे स्थित एक बहुत सुंदर नगर है। एक निकटवर्ती स्थान पर, जिसे धवलेश्वरम कहते हैं, गोदावरी सात धाराओं में खं त हो जाती है और सप्तमुखी कहलाती है। तट पर भरे हुए जल का संगीतमय होकर बहना, तट पर उगे हुए घने वृक्ष पर वास करती हुई पक्षियों का चहकना, औपचारिक स्नानादी करते हुए ब्राह्मणों का लय सहित 'इमाम मे गंगा'

मंत्रोच्चारण करना, पुरुष और स्त्रीओं का वहाँ औपचारिक स्नानादि का रंगीन दृश्य देख पाना, भोर काल में इस स्थान की सुंदरता वर्णातीत कर देती हैं।

ऐसे ही एक भोर काल में नांदेड़ के पुंलीक राव* और उनके मित्र श्री वासुदेवानंद सरस्वती के दर्शनार्थ पहुँचे और उनके समक्ष भक्ति सहित दणवत साष्टांग प्रणाम किया। स्वामीजी ने उनका दयायुक्त भाव से आव्हान किया और उनसे उनका हाल चाल पूछा। अगले वार्तालाप में शिरी का उल्लेख होना स्वाभाविक था। जैसे ही उन्होंने शिरी का नाम सुना, श्री वासुदेवानंद सरस्वती ने आनंदित हो उठ कहा, "श्री साँई बाबा भले ही मुसलमान हों, पर वे मेरे बड़े भाई हैं।" उन्होंने आगे जारी रखते हुए कहा, "यद्यपि हम ब्राह्मण हैं, मुसलमान हमारे अपने ही हैं - ऐसा प्राचीन कहावत है। पुरातन युग में ऐसा हमारे महात्मा लोग शिक्षा दिया करते थे। यदि उनका कहा माना जाये तो संसार के अंत तक कोई भी कठिनाई नही होगी। सच में हिंदु और मुसलमान में कहाँ भिन्नता है? इन सब पृथकताओं को हम ही लोगों ने स्थापित किया है। ये केवल दृष्टिकोण में भिन्नता है और बाह्य पृथकताएँ हैं। जो इन बाहरी पृथकताओं को देख उन्हें सत्य मानता है वह अबोध है। क्या हिंदुओं के तीन कान होते हैं और मुसलमानों के साढ़े तीन? केवल पहनावाओं की विशेषताओं को देख कर और ऐसे बाहरी चीज़ों को देख कर उनके धर्म के बारे में जाना जाता है। आश्चर्यचकित मत हो, कि मैं श्री साँई बाबा को जो कि एक मुसलमान हैं भाई संबोधित कर रहा हूँ। वैसे तुम एक बार भी शिरी जाकर उस महान अतुलनीय महाराज के दर्शन करो तो तुम्हें विश्व भर की भलाई प्राप्त होगी। पर यदि तुम उनके दर्शन करना न चाहो यह मानकर कि वे एक

मुसलमान हैं तो तुम मुझसे भी बात न करो। क्यों पुंलीकराव, एक मत हो?"

पुंलीकराव ने प्रार्थना करते हुए अपने हाथ जोड़े। उसने नम्रता से कहा, "हम निश्चय ही इसी महीने श्री साँई बाबा के दर्शन करने जायेंगे।" जैसे ही स्वामी ने इस वाक्य को सुना, वे अनंदित हो उठे। वे बोले, "बहुत अच्छे। इस विषय में कोई भी लापरवाही नहीं बरतना। जाओ, उस महात्मा के दर्शन जितना शीघ्र हो सके करना।" उन्होंने पुंलीकराव को एक नारियल दिया और कहा, "जैसे ही आप बाबा के पास जाओ, यह नारियल उनके हाथों में रखकर यह कहना कि यह मेरी ओर से उनके लिये चढ़ावा है। मेरे प्रणाम उन्हें पहुँचाना। मैं सन्यासी हो स्कता हूँ और सन्यासी का यह संस्कार नहीं कि वे एक दूसरे को प्रणाम करें, किंतु श्री साँई बाबा उस नियम से परे हैं। बाहरी दृष्टि से वे एक फ़कीर अवश्य लगते हैं परंतु सत्य में वे ज्ञान के सूर्य हैं। इनके उपलक्ष में क्या शोभनीय है या क्या नहीं और क्या संस्कारिक है या नहीं उनका कोई अर्थ नहीं।"

पुंलीक राव ने स्वामी की बात मान ली और उस नारियल को ले लिया। वे सब एक माह के अंदर ही शिर के लिये रवाना हो गये। उन्होंने रेल से यात्रा की और मनमा रेल्वे स्टेशन पर उतरे। अभी कोपरगाओं के लिये अगली गाड़ी के आने में कुछ देर थी, इस लिये उन लोगों ने स्वल्पाहार करने का निश्चय किया। वे एक निकटवर्ती कुँए के पास गये और साथ में लाया हुआ चिवड़ा खाया। चिवड़ा अत्यंत तीखा था क्योंकि उस में अधिक पिसी हुई मिर्ची ल गई थी। अत: उन्होंने साथ में लाये हुए कुछ नारियल को तोड़ा और उनके अंदर के कोपरे को खुरच कर चिवड़े के साथ मिला लिया ताक़ि उसका तीखापन कम हो। भूल से उन नारियलों में श्री

वासुदेवानंद सरस्वति का बाबा को भेंट चढ़ाने वाला नारियल भी था। वे मनमा से रवाना हुए और दोपहर तक शिरी पहुँचे।

जब वे श्री साँई बाबा के दर्शन से उत्तीर्ण हुए तब बाबा ने पुंलीकराव से पूछा, "क्या यह शोभनीय है? क्या किसी को वचन देकर उसे न निभाना उचित है? मेरे भाई ने तुम्हारे माध्यम से मुझे एक नारियल भेजा था। तुमने उसे अपने लिये उपयोग किया। मेरा नारियल मुझे लाकर दो।" बाबा क्रोधित हो उठे, "तुम्हारी असतर्कता की वजह से मेरी संपत्ति खो गई। तुम्हारी बुरी संगत इसके लिये उत्तरदायी है।" पुंलीक राव लज्जा और भय के कारण पीले पड़ गये। उसका गला बात करने के लिये सहायक न हो पाया। वह लज्जा से अपना सर लटकाते हुए बहुत धीमे से बोला, "महाराज यह सत्य है कि आपके नारियल को हम चिवड़ा के साथ मनमा में खा चुके। मुझसे बहुत बड़ा पाप हुआ है। कृपया मुझ पर दया दृष्टि प्रदान करें और मेरी धिष्टता को क्षमा करें। यदि आप चाहें तो मैं उसकी जगह दूसरा नारियल लाकर आपको अर्पण कर सकता हूँ।" उसने बाहर जाने के लिये खड़े होने का प्रयास किया ताकि दूसरा नारियल ला सके। बाबा ने उसका हाथ पकड़कर उसे जाने से रोका और मधुर अभिव्यक्ति सहित कहा, "मैं दूसरा नारियल नहीं चाहता हूँ। क्या वह मेरे भ्राता वासुदेव द्वारा मुझे भेजे गये नारियल की बराबरी कर सकेगा? क्या सामान्य कुएँ का पानी तीव्र गति से बहने वाली गोदावरी के पवित्र जल की बराबरी कर सकता है? ठीक है, जो हुआ सो हुआ। तुम सब मेरे संतान हो। मैं तुम पर क्रोधित क्यों हूँगा?"

आजकल हम तार और बेतार की उपलब्धियों के बारे में बहुत गर्व से चर्चा करते हैं। परंतु पूर्व काल में महात्माओं को उनके बिना ही सब कुछ मालूम रहता था। तार और बेतार का उनके लिये किसी उपयोग के न थे। जो

अपने घर पर ही भोजन कर चुका हो और वह भी मिठाईयों सहित, क्या उसे भीक्षा माँगने की कोई आवश्यकता है?

श्रोताओं जो मैं अब तक कह चुका हूँ उससे आप को इतनी उपलब्धी तो हुई होगी कि महात्मा लोग पूर्णत: और समस्त दृष्टिकोण से प्रेम के साकार रूप हैं और एक दूसरे के प्रति स्नेह भाव रखते हैं। जिसके पास न तो प्रेम है और न ही ज्ञान और केवल दिखावा करता है, वही ईर्ष्या, घृणा, विवाद और असतता को पालता है।

ईश्वर को नहीं देखा जा सकता है, वे निराकार हैं। वह ईश्वर जिन्हें हम देख पाते हैं और जो साकार हैं वे श्री साँई बाबा हैं। वे चलते बोलते भगवान हैं। वे सत्चिदानंद के पवित्र स्वरूप हैं। वे वह ईश्वर हैं जो अपने भक्तों का बचाव करने के लिये और उन्हें सही मार्ग पर चलाने के लिये अवतरित हुए हैं। वे प्रेम के साकार रूप हैं तथा दया और कृपा के भं□र हैं, जो अपने भक्त के बचाव के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। भक्तों पर किसी भी प्रकार की हानि से बचाने हेतु उनकी कृपालु दृष्टि हमेशा उनपर बनी रहती है।

हे सक्षम! हे सर्व संपन्न गुरु! हे साँई महाराज! यह दास गणु सदैव आपको ऋदय से स्मरण करता है। कृपया अपनी सदय कृपालु दृष्टि मुझ पर सर्वदा बनाये रखना।

हे श्रोताओं! यह 'भक्त सारामृत' शुद्ध अमृत है। इन महात्माओं के इतिहास का, जो जीवन के सत्य मार्ग की शिक्षा देता है, पूर्ण रूप से पान करो। यह पुस्तक हरि और हर को अर्पित है। सबका भला हो।

दास गणु महाराज के लिखे हुए 'भक्त सारामृत' के ५२वे अध्याय का यहाँ स्मापन होता है।

* वे स्वयं दासगणु ही थे। विनम्रता भाव के कारण उन्होंने अपनेको पुं□लीक राव कहा है।

अध्याय सात

जय श्री गणेश! जय हे साकार ब्रह्म! जय हो तुम्हारी हे अजेय, जो सदैव विजयी है! तुम ही निराकार ब्रह्म हो! तुम ही सम्पूर्ण ब्रह्म हो! पंढरीरामा! पां□रंगा! यह मेरी क्षमता से बाहर है कि मैं आपका विवरण दूँ या फिर आपके दैवीय शक्ति की सीमा के गुण गाऊँ। हे देवा! मैं विद्वान नहीं हूँ! मैं द्रव्य से, सोने से, भवनों से और वाहनों से लदा धनी व्यक्ति नहीं हूँ। मैंने जगत के सारे अवगुण अपना लिये हैं। मैं अपने अवगुणों का धनी हूँ। हे श्री हरि! आप अपनी कृपा से कैसे मुझ पापी को आशीर्वाद देंगे? कोई भी कई वर्षों से परित्यक्त टूटे फूटे मकानों के पास जाना पसंद नहीं करता है। पर यही साधारण अबोध मनुष्य का स्वभाव है। हे राम के सहचारी! आपका स्वभाव इस से पूर्णत: विपरीत है। हे गोविंदा! दोषी को हर स्थान पर दण□ दिया जाता है, पर आपके शाही दरबार में दोषी को सहायता और आश्रय दिया जाता है। हे देवा! जो असीमित दया का प्रदर्शन आपने उन भाग्यहीनों पर, जिनका इस संसार में और कोई भी न हो, किया है, वह अभूतपूर्व है। देखो शंकर बिल्व पत्र का धारण कितने आनंद से करते हैं। पर हम कितना भी उनका निरीक्षण करें हमें उन पत्तों में बिंदु मात्र सुगंध नहीं मिल पाता है। पर शिव ने इस दोष को कोई महत्व ही नहीं दिया है। हे रक्षक! गोकुल में आपने अपने साधारण यादव मवेशी चराने वाले मित्र पैं□िया द्वारा दिये गये बाँसी रोटी को इतने चाव से खाया, मानो वह अमृत से भी अदिक स्वादिष्ट हो। जब देवता और दैत्य दूध (अमृत) निकालने हेतु समुद्र मंथन कर रहे थे, उस समय विश्व विनाशी विष हलाहल का उद्भव हुआ। जब सब उससे बचने के लिये पलायन कर चुके

थे, शिव ने उसे अपने कंठ में धारण कर लिया। अत: हे नारायण! यदि आपने अपने अच्छे नाम की सुरक्षा नहीं की (मुझ पर अपनी कृपा दृष्टि ालकर), आपके यश पर कालिख पुत जायेगा।

गुरुस्थान

हे श्रोताओं! श्री साँई बाबा की कथा के अमृत को ध्यान से सुनो। अपनी भलाई पर केंद्रित हो जाओ। श्री साँई बाबा नीम के वृक्ष के तले कुछ समय तक ऐसे ही रहे। तदपश्चात नाना साहेब देंगले ने उन्हें मस्जिद में रहने के लिये आग्रह किया। बाबा ने उनकी बात मान ली और तब से मस्जिद में रहने लगे।

जब बाबा नीम वृक्ष के नीचे रहते थे तब एक दिन एक विचित्र घटना घटी। उनके सम्क्ष कुछ भक्तगण श्रद्धा सहित हाथ जोड़कर बैठे हुए थे। बाबा बोले, "यहाँ पर एक समाधी है। जो यहाँ खोदने का प्रयास करेंगे उन्हें हानि पहुँचेगी। कोई भी यहाँ न खोदे।" वहाँ जो बैठे हुए थे उनमें से एक ने कहा, "बाबा यहाँ तो मुसलमानों का क़ब्रिस्तान है। यहाँ तो कई समाधियाँ होंगी। इसमें आश्चर्य की बात क्या है?" दूसरे ने कहा, "नहीं, यह मुसलमानों का क़ब्रिस्तान नहीं है। वह यहाँ से थोड़ी दूर पर है।" एक और ने कहा, "नहीं यह स्थान भी क़ब्रिस्तान का हिस्सा है। पूर्व में यहाँ भी समाधियाँ पाई गई थीं। हाल ही में जब यहाँ खुदाई की गई थी तब यहाँ क़ब्र मिले।" इस तरह वहाँ उपस्थित लोगों में तर्क वितर्क होने लगा। श्री साँई बाबा ने उनको यह बहस को करने से रोका और कहा, "जो युक्ति और दार्शनिक शास्त्र में रुचि रखते हों उनके लिये यह बहस छोड़ दिया जाये। बहस से कोई परिणाम नहीं निकलता है। भक्ति के मार्ग में बहस की कोई जगह

नहीं है। अग्नि और जल के मिश्रण से ही इस पृथ्वी का गठन हुआ है। ईश्वर के एक अंश से प्राण की उत्पत्ति हुई है। विश्व में समस्त जीवों का उद्गमन इस पृथ्वी से हुआ है। वही पृथ्वि (मिट्टी) फिर पृथ्वी से मिलकर पृथ्वी बन जाती है। वह यहाँ या फिर वहाँ हो सकता है; हर जगाह की मिट्टी में या तो मनुष्य का या किसी जीव के शरीर का अंश होगा, जो कि उनकी मृत्यु के बाद परिवर्तित हुआ होगा। इस तरह यह कहा जा सकता है कि यह संपूर्ण पृथ्वी ही क़ब्रिस्तान है। इस सत्य को याद रखें। पूर्व में, महान महात्मा कबीर ने अपना देह पवित्र गंगा के तट पर त्यागा था। उस समय हिंदु और मुसलमानों में एक विवाद उनकी अंतेष्ठी हेतु खड़ा हुआ था। हर एक ने यह दावा किया कि वे उनके महात्मा थे, इसी लियी उन्हीं को उनकी विधि अनुसार उनका अंतेष्ठी करने का अवसर प्राप्त होना चाहिये। कबीर ने इस समस्या का समाधान सोच रखा था। उन्होंने अपने शरीर को तुल्सी के पत्तों में, चमेली के पुष्प तथा बाजरा के पत्तों में परिवर्तित कर लिया। ईश्वर के प्रति निष्ठा रखने वाले महात्मा सभी को संतुष्ट रखने की क्षमता रखते हैं।

अंतिम संस्कार से पहले एक शोभायात्रा निकालने हेतु हिन्दुओं ने तुलसी के पत्ते चुग लिये क्योंकि वह उनके लिये पवित्र था। मुसलमानों ने चमेली और बाजरा के पत्ते उठाकर दफ़्न से पहले उनका जूलूस निकाला। महीपति द्वारा लिखे गये पुस्तक, 'भक्ति माला' तथा 'भक्त विजयं' में इसका विस्तार से विवरण किया गया है। यह संभवत: ईश्वर की इच्छा रही होगी कि पिछले अवतरित दशा में अंतिम संस्कार ठीक से या संपूर्णत: न किया गया हो वह इस अवतरित दशा में होगा।

कबीर कितने उच्च कोटी के महात्मा रहे होंगे जिनकी श्रद्धा श्री रामचंद्र, अल्लाह-ई-ल्लाही और परवरदिगार के लिये बराबर थी।

वे हिन्दु जिन्होंने तुलसी के पत्ते कबीर के शरीर का प्रतिनिधित्व करते हुए समझ कर उन्हें एकत्रित किया था, उन्होंने उन्हें एक शोभायात्रा निकालकर हिंदु शास्त्रों के अनुसार गंगाजल में विसर्जित किया। यह प्रथा आज भी जारी है। जिसके शरीर को गंगाजल में विसर्जित किया हो उसकी समाधी बनाने का उपचार नहीं है। इसी लिये हम गंगा तट पर कबीर की समाधी नहीं देख पाते हैं। मुसलमानों ने जो चमेली के फूल और बाजरा के पत्तों को इकट्ठा किया था, उन्हें देश भर में ले जाया गया और वहाँ वहाँ फूल और पत्तों को बीच में ाल कर कबीर की समाधियाँ बनायी गयीं।

कबीर के दिनों में सारे देश में ही छोटे बड़े मुसलमान राज्यों का फैलाव था। हस्तिनापुर से नवाबों ने सारे देश को संभाल रखा था। वह हस्तिनापुर आजका दिल्ली क्षेत्र है। इस प्रांत का रहने वाला एक मुसलमान, किसी काम से दिल्ली गया था। वापस लौटते समय किसी और काम से वाराणसी भी गया। जब वह काशी पहुँचा तब वहाँ हिंदु और मुसलमानों के बीच कबीर के अंतेष्ठी पर विवाद चल रहा था। बाक़ी मुसलमानों के साथ सम्मिलित होने के पश्चात, उसने भी एक बाजरा का पत्ता प्रसाद स्वरूप उठाया। वह उसे यहाँ ले आया और कबीर के लिये समाधी बनायी। मेरे कथन पर शंका मत करना; वे जिन्हों ने हिन्दु और मुसलमान को समभाव से देखा - वे ही अतुलनीय कबीरदास मेरे गुरु हैं। मुझे भली भाँति मालूम है कि उस समय क्या हुआ था। इसी लिये मैंने समाधी के निकट रहने का निश्चय किया है। इस समाधी की दैवीय शक्ति का वर्णन करना मेरे सामर्थ्य से बाहर है। जो भी इस स्थान को वृहस्पतिवार और शुक्रवार को साफ़ कर उस पर सुगन्ध चढ़ायेगा उसे ईश्वर का आशीष प्राप्त होगा", बाबा ऐसा बोले।

इसके पश्चात जितनी भी घटनायें घटीं हैं, उनका वर्णन 'भक्तलीलामृत' के ३१वें, ३२वें और ३३वें अध्यायों में किया जा चुका है। इस लिये मैं उनको यहाँ दोहरा नहीं रहा हूँ। संक्षिप्त में मैं उन घटनाओं का वर्णन करूँगा जो बाद में घटीं, क्योंकि श्री साँई बाबा का इतिहास एक अथाह सागर जैसे है। मैं उसका दूर में स्थित तट को देख नहीं पा रहा हूँ। क्या मेरे जैसा एक कीट साँई चरित्र के विशाल पर्वत को लांघ पायेगा?

दीक्षित क� पा�रङ्ग दिखते हैं

अब हरिभाऊ दीक्षित का अनुभव सुनिये। इस कथा को सुन, आपके ऋदय में स्थित माया का विनाश हो जयेगा। यह हरिभाऊ नागर कुल के ब्राह्मण हैं। वे अत्यंत पढ़े लिखे और अंग्रेज़ी बोल सकने वाले पुरुष हैं। ठीक जैसे मधु मक्खी कमल को अपना आश्रय बना लेता है, वे भी श्री साँई बाबा के चरण कमल को अपना आश्रय बनाये हुए थे और शिर�ी में ही वास करने लगे। श्री साँई बाबा की कृपा से उनके व्यक्तित्व में मौलिक परिवर्तन आया। उनके उग्र भाव और कठोर ऋदय के स्थान पर विनम्रता और शांत चित्त ने जगह ली।
एक सुबह हरिभाऊ अपने कमरे में बैठकर ध्यान कर रहे थे। अचानक उनका ऋदय प्रफुल्लित हो उठा और उनकी आँखें बंद हो गईं। वह अतुलनीय नीलावरण, तुलसी के पत्तों की माला से सुसज्जित श्री हरी ने पां�रंग विट्ठल के रूप में एक ईंट पर खड़े हुए और अपने कमर पर हाथों को रखे हुए उन्हें अलौकिक दर्शन दिया। वे पवित्र पीत वस्त्र धारण किये हुए थे। उनका सर मोर पंख से सुसज्जित था और उनका शरीर चंदन से लिपा हुआ था। उनका एकाएक यह दर्शन अति सुंदर और भव्य था।

जैसे ही यह पवित्र दर्शन प्राप्त हुआ, हरिभाऊ विस्मित और प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने सोचा, "श्री साँई बाबा की सदय कृपा के कारण ही मुझे यह शुभ और महत दिव्य दृश्य दिख पाया। यद्यपि मुझ में कोई योग्यता अथवा अधिकार ईश्वर के इस दर्शन पर नहीं था, बाबा ने अपनी दया के कारण इस दर्शन को मुझे प्राप्त कराया। इस जीवन में इस दिव्य अनुभव के पश्चात अब पाने की इच्छा क्या रह जाती है?" वे तुरंत ही बाबा के दर्शन हेतु मस्जिद पहुँचे। बाबा ने जैसे ही उनको देखा वे बोल उठे, "क्यों काका? क्या आज तुम्हारी इच्छा परिपूर्ण हुई? क्या तुमने विट्ठोबा पाटिल को देखा? वे महात्माओं के पाटिल (अफ़सर) हैं। वेद स्वयं उनका वर्णन करने में असमर्थ रहे जिन्होंने सारे संसार को बचाया हुआ है।" काका ने विनीत भाव से अपने हाथ जोड़े और बोले, "बाबा आपकी दिव्य लीला का वर्णन नहीं किया जा सकता है। आपके सिवा और कौन इस गूढ़ रहस्य को जान सकेगा? केवल माँ को ही पता रहता है कि उसके संतान के लिये क्या अच्छा है या क्या बुरा। जब आप जो हमारी माँ हैं हमारे साथ हैं, तब हमें हमारे लिये क्या भला है उसकी चिंता हम क्यों करें? हम आपके संतान हैं। इस से अधिक और क्या कह सकता हूँ? आपके चरणों के प्रति चट्टान जैसी आस्था रखना ही पर्याप्त है। आपसे प्रार्थना है कि मुझे ऐसी आस्था प्रदान करें। पां�रंग विट्ठल के दर्शन आप ही की लीला है। क्या कठपुतली का खेल देखने का तात्पर्य यह है कि हम कठपुतली चलाने वाले को भूल जायें? आपसे बेहतर कोई भी कठपुतली चलाने वाला अथवा जादूगर नहीं है। वह ईश्वर भी आपके हाथ में एक कठपुतली है। उन्हें भी आपके कथन अनुसार कार्य करना पड़ता है। आप विश्व ब्रह्माण� स्वरूप हैं। आप मेरी माँ हैं। इस संतान की केवल यही प्रार्थना है कि जहाँ भी दृष्टिपात हो वहाँ आपका वह स्वरूप ही दिखे।" बाबा ने उत्तर दिया, "वह

घटना भी समयानुसार घटित होगा, काका। शीघ्रता मत करो। थोड़ा धैर्य रखो।"

नाना साहेब चाँदोरकर से हरिभाऊ दीक्षित कहीं अधिक श्री साँई बाबा के भक्त थे। उनके चक्षु अंतर्दृष्टि गोचर थे और उन्होंने कई साधानाएँ की हुई थीं। उनका विश्वास था कि उन्होंने दिव्य दर्शन केवल अपने गुरु की भक्ति के कारण ही प्राप्त किया था। वह जिनके प्रति गुरु प्रसन्नित थे, क्यों उन्हें ईश्वर के दर्शन प्राप्त नहीं होंगे? क्या उस ईख के खेत में, जो कटाई के लिये तैय्यार हो, गन्ने का रस पीने के लिये नहीं मिलेगा? जब किसी को गंगा उपलब्ध हो तो क्या उसको पेय जल का अभाव होगा? जब किसी के हाथ में उत्तम श्रेणी का केसर हो तो क्या सुगंध की कमी होगी?

मेघा

एक गुजराती ब्राह्मण था जिसका नाम मेघा था। वह एक बुद्धिमान व्यक्ति था। वह नियमित रूप से गायत्री मंत्र का जाप निष्ठापूर्वक करता था। उसका शरीर सु□ोल था। उसके केश लम्बे और जटा जैसे थे। दिवा-रात्री वह 'शिव, हर, हर' का जाप करता था। वह एक ऐसा अविवाहित पुरुष था जो प्रतिदिन निष्ठापूर्वक समस्त धार्मिक आचरणों का पालन किया करता था। वह हरि विनायक साठे के साथ शिर□ी आया था।

मेघा भोर होने से पूर्व ही ठं□े पानी से नहाता था। वह अपने शरीर पर विभूति और चंदन से अपने माथे पर त्रिपुंदरा का अंकन करता था। वह ध्यान करने मृगछाला पर बैठा करता था। उसके भक्तिभाव से परिपूर्ण धार्मिक आचरण के कारण उसके शरीर से एक पारलौकिक आभा की उत्पत्ती होती थी और वह आज का जालंधर प्रतीत होता था। श्री साँई बाबा के

दर्शन हेतु वह दिन में तीन बार मस्जिद जाया करता था। वह बाबा में शिव को पाता था। उसे यह लगता था कि स्वयं शिव मस्जिद के रजकीय दरबार में विराजे हुए हों। अत: वह बाबा के चरणों में अपना माथा रखकर पंचाक्षरी 'ओम नम: शिवाय:' का उच्चारण करता था। वह बाबा के पवित्र चरणों का पूजन शिव के अति प्रिय बिल्व पत्र से ही किया करता था। वह प्रतिदिन ५ मील पैदल चल कर दूर स्थित गोदावरी नदी से जल भरकर लाता था ताकि वह बाबा का अभिषेक कर सके। यदि कोई उससे प्रश्न करता तो वह बोलता, "क्या आप जानते हैं कि बाबा कौन हैं? वे स्वयं शिव हैं। उनको केवल गोदावरी के जल से ही स्नान कराना है। सादे पानी से यह न होगा।" श्री साँई बाबा मेघा की भक्ति से प्रसन्न थे। उसके दैनिक पूजा के लिये उन्होंने उसे एक शिव लिंग भेंट किया। यह मेघा की संक्षिप्त कथा है। जिस तरह से श्री साँई बाबा की पूजा की जाती है ठीक उसी तरह वे अपनी कृपा बरसाते हैं। मैंने इस कथा को इसी तथ्य के दृष्टांत के तौर पर रखा है।

श्री साँई बाबा की लीलाएँ अद्भुत तथा रमणीय हैं। वे शिव भक्तों के समक्ष शिव का ही रूप में प्रकट होते हैं, विष्णु भक्तों के समक्ष विष्णु के रूप में एवम मुसल्मानों के समक्ष परवरदिगार के रूप में। एक ओर वे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे वे एक ईंट पर खड़े हुए पांडुरंग विट्ठल हों और दूसरी ओर साँई बाबा लगते हैं। अपने भक्तों के प्रति उनका प्रेम अपरिमित था।

वह ईंट

बाबा के पास एक अच्छे से पका हुआ पुरातन ईंट था। बाबा को उस ईंट के प्रति अपने प्राणों से अधिक प्रेमयुक्त लगाव था। सोते समय प्रति दिन

वे उसे अपने तक़िये जैसे उपयोग करते थे। नाना साहेब चाँदोरकर ने यह देखा और कहा, "आप इस ईंट को क्यों तक़िये जैसे उपयोग करते हैं? मैं एक सुंदर सा तक़िया आपके लिये सिलवा देता हूँ। इस ईंट को फैंक दीजिये।" बाबा ने तब उत्तर दिया, "तुम चाहे सैंकड़ों हज़ारों तक़िये ले आओ वे इस ईंट की समानता नहीं कर सकते हैं। यह मेरे गुरु का दिया हुआ भेंट है। यह मुझको सारे संसार से अधिक मूल्यवान है। यह मेरा ध्यान है और ध्यान का केंद्र भी। कोई भी इसका मूल्यांकन नहीं कर सकता है। यदि यह टूटता है तो मेरे प्राण इस शारीर को छोड़ देगा। इस ईंट पर मेरे गुरु के चरण पड़े थे, तभी मैंने इसे अपना सिराना बनाया। जो भी अपने गुरु के चरण कमलों पर अपना माथा रखता होगा उसकी छाया भी पवित्र हो जाती है। इसी कारण मैं अपना सर इस ईंट पर रखता हूँ क्यों कि इसे मेरे गुरु के चरण कमालों का स्पर्श मिला था। इस तरह मैं वह व्यक्ति बन रहा हूँ जो हर रोज़ अपने गुरु के चरणों पर सिर रखता हूँ। नाना! तुम लोग प्रात: आकर मुझे नमस्कार करते हो। मैं उन नमस्कारों को अपने गुरु को अर्पित कर देता हूँ। जैसे गोदावरी नदी उन सब जलों के प्रवाहों को अपने में समेट लेती है, जो उससे जुड़ता हो और अंतत: समुद्र में परेषण कर देती है, उसी तरह आप लोगों के नमस्कार भी मैं अपने गुरु को समर्पित कर देता हूँ। जब इस ईंट को अपने गुरु के चरणों में रखा था, तो मेरे गुरु जो मेरी माँ की तरह मुझसे अपने संतान जैसे प्रेम करते थे, मेरी भक्ति को देख अनंदित हो हँस पड़े। वे बोले, 'बहुत अच्छे। पूर्व में पुं�लिक ने कृष्ण को एक ईंट भेंट किया था और उनसे उस पर खड़े होने का आग्रह किया था। अब तुम वही दोहरा रहे हो और मुझसे आग्रह कर रहे हो कि मैं उस पर अपने पांव रखूँ। तुम्हारी उत्कृष्ट भक्ति के बल के कारण मुझे सदा के लिये इस ईंट पर खड़े रहना पड़ेगा। शरीर समाधी

के समय जिस अवस्था में होता है, उसी तरह इस ईंट में भी वह स्थित होगा।’

यही सत्य है। मेरे सद्‌गुरु स्वामी श्री वेंकटेश्वर में विलीन हो गये थे और स्वयं वेंकटेश्वर हो चुके हैं। अब वे स्वामी वेंकतेश्वर के रूप में स्थित हैं। श्री वेंकटेश्वर के पदचिन्ह इस ईंट पर हैं। तभी मैं अपने गुरु को वेंकुशा (वेंकटेश्वर स्वामी) पुकारता हूँ। इस ईंट की शक्ति अतुलनीय है। क्या तुमने अब यह जाना कि यह क्या है?"

नानासाहेब चाँदोरकर तथा अन्य भक्तगणों ने बाबा को सुना और उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। चाँदोरकर बाबा के परितप्त भक्त थे। उनका देहांत पुणे में १९२३ के श्रावण के माह में हुआ और वे श्री साँई बाबा के श्री चरणों में पहुँच गये। मैं चाँदोरकर को प्रणाम करता हूँ।

रतनजी और गुटों व जातियों में प्रभेद

रतनजी साहेब नांदेड़ से थे। एक बार वे श्री सांई बाबा के दर्शन हेतु अपने परिवार सहित शिर्डी के लिये रवाना हुए। सांई बाबा के प्रति तीव्र भक्ति रखने वाले रतनजी एक नम्र एवम सांस्कारिक व्यक्ति थे। वे पारसी थे। जिस दिन वे शिर्डी के लिये प्रस्थान करने वाले थे उनके हर्ष की कोई सीमा नहीं थी। उस दिन शाम को ४-५ बजे उन्होंने अपने मित्रों को चाय पर बुलाया। रतनजी के कई मित्र थे। उनके अंदर धन का अभिमान किंचित मात्र भी न था। उनके मित्र भी किसी एक जाति के या धार्मिक संप्रदाय से नहीं थे। कुछ ब्राह्मण थे, कुछ वैश्य, कुच बुनकर जाति के थे और कुछ योद्‌धा श्रेणी के। कुछ पारसी थे तथा कुछ मुसलमान। पर उस मंडली में कहीं जाति अथवा पंथ को लेकर कोई घृणा या भेद भाव न था। वह

मंली एक उद्यान समान थी, जहाँ गुलाब और चमेली एक साथ प्रस्फुटित होते थे। जहाँ परसपर सम्मान और प्रेम का सुगन्ध भरमार होता है वहाँ जाति और पंथ के आधार पर हठधर्मिता के दुर्गंध के लिये कोई स्थान नहीं होता है। केवल यही नहीं, जब विभिन्न जातियों और पंथ, सौहार्द और परसपर प्रेम के वातावरण में इकट्ठे होते हैं उस महक के मिश्रण से अच्छे लोगों का मिलना (सत्संगम) एक अलग ही सुगंध को जन्म देता है जिसका प्रभाव बहिर्मुखी होता है।

यह पृथ्वी वह जगह है जहाँ विभिन्न प्राकार के पुष्प खिलते हैं। यही पृथ्वी सभी प्रकार के फूलों को जन्म देती है और उनका पोषण भी करती है। ठीक उसी तरह ईश्वर भी सभी जाति, पंथ या राष्ट्रीयता के लोगों को जन्म देकर उनका पालन पोषण करते हैं। पर आज की पीड़ा यह है कि न केवल विभिन्न पंथ आपस में घृणा भाव से भिड़ रहे हैं, बल्कि खंित और बिखरे हुए हिंदुओं में भी विभिन्न जातियाँ घृणा भाव से और अधिक द्वेष से लड़ रहे हैं। वे एक दूसरे की सम्पत्ती, स्त्री या उनके जीवन का विनाश करने में संकोच नहीं करते हैं।

ब्राह्मण प्रश्न करते हैं, "क्षत्रिय हम लोगों से निम्न है। फिर भी वह यह वृथा चेष्टा कर रहा है कि वह हमारी बराबरी करे। जो जन्म से ब्राह्मण नहीं है वह कहाँ से वह बुद्धि व महिमा लाएगा?" क्षत्रिय उत्तर देते हैं, "सच बतायें तो यह ब्राह्मण वस्तुत: निम्न श्रेणी के होते हैं। एक ऋषि का जन्म एक हरिजन स्त्री के कोख से हुआ। एक और ऋषि की माँ मिश्रित जाति की थीं। व्यास एक वैश्या का बेटा था। मछवारा वल्या वालमिकी बन गया। क्या इन लोगों में बुद्धि और पांित्य नहीं था? तद्पश्चात ब्राह्मणों ने सारे तथ्यों को बदलते हुए और हमारे धार्मिक ग्रंथों को विरचित कर, निराधार इतिहास की रचना की है। उन्होंने अपने दोषों

को बहुत चातुर्य से ढक दिया है। वे बोलते हैं कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख मंल से हुआ है। क्या इससे अधिक मूर्खता की बात कभी सुनी है? कोई मुख मंदल से जन्म ले सकता है भला? आप स्वयं ही इस कथन की यथार्थता का अनुमान लगा सकते हैं। यदि वे इस कथन पर हठ करते हैं तो क्या वे बीमारी उत्पन्न करने वाले कीटाणु समान नहीं हैं? क्योंकि कीटाणु ही चेहरे से जन्म ले सकते हैं, नाक के कफ़ से और मुँह के घाव से। क्यों हम ऐसे लोगों को प्रणाम करें? क्या कीट कभी सिंघ बन सकता है? आज के अधिकतर धार्मिक पुस्तकों को इन्ही लोगों ने लिखा है। इन पुस्तकों में उन्होंने निर्लज्ज होकर अपनी ही प्रशंसा की है। अपने आप को गुरु कहलाने वाले यह लोग क्षत्रियों के ऊपर अपने स्थान की पकड़ बनाये हुए हैं। उन्होंने पुराणों को लिखकर क्षत्रियों पर अवांछनीय प्रतिबंद भी लगाया हुआ है।"

जो दूसरी जाति के लोग ब्राम्हणों और क्षत्रियों का तर्क सुनते हैं, वे कहते हैं, "यह सारे तर्क झूट हैं, हमें बुद्धु बनाने के लिये सब दिखावा है। सच बताया जाये तो यह दोनों चोर हैं। एक ने चोरी की है और दूसरे ने चोरी की हुई वस्तुओं को छिपाया है। वे आपस में मिल गये हैं और अपने किये का दण हमारे भुगतने के लिये छोड़ दिया है। अब उनका गठबंधन टूट चुका है और इस लिये एक दूसरे के किये अपराध अब सार्वजनिक कर रहे हैं। पर वे असली तथ्यों को चातुर्य से छिपा रहे हैं। वे एक साझेदारी पर पहुँच चुके हैं और पुरानों को विरचित कर यह कहा है कि भगवान दो बार ब्राह्मण के रूप में अवतरित हुए थे यानी वामन और परसुराम और दो बार क्षत्रिय के रूप में, राम और कृष्ण। आप यह कह सकते हैं कि वामन अवतार और परसुराम अवतार को इतना महत्व नहीं दिया गया है जितना कि राम और कृष्ण को। सारा रहस्य यहीं छुपा हुआ है। राम और कृष्ण

भले ही महान हों पर उनके गुरु ब्राह्मण थे। श्री राम ईश्वर थे परंतु उन्हें वशिष्ट को प्रणाम करना पड़ा। यह तो वैसे ही हुआ जैसे सूर्य को कोई पुस्तक पढ़ना था तो उन्होंने पढ़ने के लिये तेल से प्रज्वलित दिया मांगी। उसी तरह श्री राम जो कि स्वयं ईश्वर थे ज्ञान अर्जन के लिये वशिष्ट के पास गये। पर उन्होंने भगवान को वैश्य और शूद्रों के समीप जाने नहीं दिया। इन दोनों जतियों द्वारा रचित इस मिथ्या का वर्णन कैसे किया जाये? गौतम ने क्षत्रिय जाति में जन्म लिया था। पर उन्हें उस जाति से इतनी घृणा थी कि वे उसे छोड़ चले गये और बौद्ध धर्म की स्थापना की। बासव का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था पर वे उनके दूसरे ब्राह्मणों के किये हुए पापों से इतनी घृणा करते थे कि उन्होंने अपनी जाति को त्याग दिया। यदि ब्राह्मणों का दिया हुआ विवरण कि क्षत्रियों की उत्पत्ति कैसे हुई थी सुना जाए, तो हास्यास्पद विषय होगा। वे कहते हैं उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के कंधों से हुई थी। उन्होंने क्षत्रियों की उत्पत्ति कंधों के लीख(जूँ) जैसे करवा दी। वे कहते हैं कि वैश्यों की उत्पत्ति उनके कमर और जांगों के संधि-स्थल से हुई थी। हम मासूम लोग इसे सत्य मान लेते हैं। उन्होंने वैश्यों का मल के कीट से बराबरी की है पर हमें सत्य की सीख नहीं मिल रही है।

उन्होंने शूद्रों को ब्रह्मा के चरणों से उत्पत्ति होते हुए दर्शाया है जिसकी तुलना कीचड़ से और कवक से ग्रसित चरणों के कीटों से किया जा सकता है। ब्राह्मण और क्षत्रियों में हो सकता है कि अब कोई द्वंद चल रहा हो पर १९वीं शताब्दी तक वे दोनो एक थे। इस षड़्यंत्र में दोनो की मिली भगत थी। पुराणों से यह बहुत स्पष्ट हो जाता है। एक बार एक ऊँट ने एक गधे से कहा, 'मित्र! तुम्हारा गायन उत्तम है! तुम्हारा गीत बहुत सुरीला है। यदि वे सुन लें तो दिव्य अप्सरायें, स्वर्ग छोड़कर तुम्हारे पास दौड़ी

चली आयेंगी।' गधा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने ऊँट की इस तरह प्रशंसा की, 'मित्र, जो तुमने मेरे गायन के बारे में कहा वह मुझे कर्णप्रिय लगा। पर तुम्हारा सौन्दर्य? कामदेव भी तुम्हारे सामने कुरूप लगेंगे।' ब्राह्मण और क्षत्रिय इसी प्रकार के हैं।"

श्रोताओं, चारों वर्णों में इस तरह यह कह कर कि वे दूसरे से बेहतर हैं, आपस में विवाद चल रहा है, और हिंदु समाज को क्षति पहुँचा रहे हैं। इस तरह के अंदरूनी कलह से किसी को लाभ नहीं होता है। चमेली, कुमुदिनी, गेंदा, गुलदाउदी और गुलाब सब एक ही उद्यान में उगते हैं। उनकी एक दूसरे के प्रति शत्रुता नहीं होती। वे दूसरे का विनाश करने पर तुले नहीं रहते। बल्कि उनकी एकता और एक स्थान पर उगने से उस उद्यान की ख्याति बढ़ती है और दूर दूर तक फैलती है। उसी तरह यदि समाज की सभी जातियाँ एक होकर और सार्वजनिक भलाई के लिये कार्य करें, वृहद समाज की प्रगती होकर रहेगी। हिंदुओं में बहु जातियाँ हैं। मुसलमानों में शिया और सुन्नी। जैनियों में दिगाम्बर और श्वेताम्बर। इसाईयों में कॅथौलिक और प्रोटेस्टंट। ठीक उसी तरह पशु पक्षियों में भी विभिन्न प्रकार हैं। जीवन की यह भिन्नता सर्वदा रहेंगी। पर किसी को एक जाति की अन्य जाति की अपेक्षा में श्रेष्ठता या निम्नता को जताना उचित नहीं है। जब उपनयन (पुरुष ब्राह्मण का वयस्कता के लिये औपचारिक प्रवेश) के समय कर्ण में छिद्र किया जाता है, तब से ब्राह्मण की पत्नी के सर के केश, उसके पति की मृत्यु के पश्चात, मुं□वा दिये जाने तक, बिना नाई के कुछ भी नहीं किया जा सकता है।

क्या यह यथोचित है कि नाई को हीन दृष्टि से यह सोचकर देखा जाये कि वह नीच जाति का है? कोई महिला ब्राह्मण कुल की हो सकती है, पर क्या वह अपने संतान का मूत्र या मल की सफ़ाई नहीं करती है? सत्य

में वह वही कार्य कर रही है जो एक नीच जाति का व्यक्ति करता। इसको इस तरह भी देखा जा सकता है, चाहे किसी भी जाति की वह हों सभी माँयें नीच जाति की होती हैं। इस सत्य से अनजान बने रहकर और दूसरे के प्रति जुगुप्सा व्यक्त करना जिसने हमारे जैसे ही मनुष्य के कोख से जन्म लिया हो, केवल इसी कारण कि वह मल साफ़ करता है, अनुचित है। इसे दुबारा सोचो। ब्रह्मा के अंग प्रत्यंग से विभिन्न वर्णों की उत्पात्ति की कथा को तोड़ना मरोड़ना बंद करो। पुरुष सुक्त ने समस्त समाज की तुलना एक व्यक्ति विशेष से की है और विभिन्न वर्णों का काव्य द्वारा प्रतिनिधित्व किया है। जातियों की उत्पत्ति उनके कर्मस्थल और उपजीविका से हुई है न कि मानी हुई श्रेष्ठता या निम्नता से। इस मतिभ्रंश को प्रश्रय मत दो।

समाज ईश्वर का मंदिर है। व्यास ने इस समाज में धर्म फैलाया। आदिशंकरा ने कुछ गद्दे बिछाये, अच्छे आचरण और नैतिकता के वातायनों को सँजोया तथा वालमिकी को वातायन के पर्दे जैसे प्रतिष्ठित किया। शास्त्रों ने इस मंदिर को रंगा। इस तरह कई महात्माओं ने हमारे सुख-शांति तथा मेल-मिलाप से रहने के लिये कई आयोजन किया। पर श्री शंकराचार्य के पश्चात धर्म को भुगतना पड़ा। समाज के उद्धार के लिये और सच्चे आध्यात्मिकता को पुनर्स्थापित करने के लिये संत तुकाराम और कई महात्माओं को अवतरित होना पड़ा। वे कर्म, भक्ति और ज्ञान के दीपक लाये, उनमें निष्कपटता, भक्ति और श्रद्धा का तेल ालकर उन्हें प्रज्वलित किया। पर यह सब अब खो चुका है। जाति के आधार पर पृथकता, श्रद्धा के अभाव के धूल तथा वे छ: शत्रु काम, क्रोध, लोभ, भ्रम, अहंकार और ईर्षा वह कूड़ा-कर्कट हैं जो इस मंदिर में भर गये हैं और उसे दूषित कर रहे हैं।

इसी लिये मेरे धैर्यधारी श्रोताओं, मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि हम सब एक हो जायें और भगवान के इस मंदिर से इस प्रदूषण को झाड़ू लाकर परिष्कृत करें। इसको फिर से प्रेम से ऊज्वल करें। यदि एक परिवार के भाई आपस में लड़ते हैं तो उन दोनो का दिवालिया निकल जाता है; उनके वकील अमीर हो जाते हैं। इस से पहले कि हमारे साथ भी ऐसा कुछ हो, हम लोग अपनी आँखें खोल लेते हैं। चलिये इस परस्पर के प्रति घृणा की भावना को हमारे समाज से, जो एक मंदिर है, निकाल फैंकते हैं और भ्राताओं जैसे आनंदमय होकर एक साथ रहते हैं। इस आचरण से हम सब खुश रहेंगे और हम सभी को लाभ होगा। देर मत करो। अच्छे दिनों को टालो मत। अभी आरंभ करते हैं और सत्य को खोजते हैं।

मुझे अपने जैसों में ही एक समझो। यह मेरी संचित प्राप्तियाँ हैं जो मैं इन विषयों पर आपसे आज बात कर सका। सभी जातियों और गुटों में प्रभेद और घृणा के कचरे और धूल को झाड़ू से इस समाज रूपी मंदिर को मिटा दो। उस झाड़ू के रूप में मुझे उपयोग कर सकते हो। यह मेरी आपसे प्रार्थना है।

अब अपनी कथा पर वापस आते हैं। रतनजी के सभी मित्र उनके घर पर उनके साथ चाय के लिये आमंत्रित बैठे हुए थे। उसी समय एक महात्मा वहाँ आये। वे मौला साहेब थे, जो नांदेड़ में गोदावरी नदी के तट पर घूमा करते थे। उनका मुख मं�ल ईश्वर्य आभा से चमक उठा था। रतनजी और उनके मित्रों ने मौला साहेब का स्वागत किया और उनको सम्मानीय आसन पर बैठाया। उन्होंने उनका शिष्टाचार से सतकार किया। चाय की गोष्ठी समाप्त हो चुकी थी। रतनजी ने मौला साहेब को सम्मानित करने हेतु,

उनका श्रद्धा और भक्ति से माल्यार्पण किया और उन्हें एक नारियल भेंट किया।

मौला साहेब ने कहा, "रतनजी, अब एक क्षण भी इंतज़ार मत करो। शिर्डी के लिये तुरंत प्रस्थान करो। जैसे ही बाबा से मिलोगे मेरे सलाम उन्हें अर्पित करना। उस उत्तम योगी साँई बाबा के समान तुम किसी भी फ़क़ीर को न पाओगे। तुम स्वयं उनकी ईश्वरीय शक्ति का अनुभव समयोपरांत करोगे। केवल यही नहीं। अब समय आ गया है कि तुम्हारी सारी इच्छायें पूर्ण हों।" मौला साहेब ने रतनजी को आशीर्वाद दिया और प्रस्थान कर गये। रतनजी मौला साहेब का दर्शन पाकर बहुत आनंदित हुए क्योंकि उनको यह लगता था कि यह अच्छा शकुन है। वे उसी क्षण शिर्डी के लिये रवाना हो गये।

रतनजी शिर्डी पहुँचे और उन्होंने बाबा को सम्मान पूर्वक नमस्कार किया। बाबा ने उनपर दया की दृष्टिपात की और बोले, "अच्छा तुम आ गये हो? बहुत अच्छे! मैं तुम्हारे बारे में ही सोच रहा था। तुम्हारी परेशानियाँ खत्म हो चुकी हैं। तुम्हें और चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। यह सब तो ठीक है परंतु क्या तुम मेरे लिये कोई दक्षिणा लाये हो?" रतनजी ने भक्ति सहित उत्तर दिया, "आपने तो केवल मुझे आदेश करना है और मैं आपको मेरे सामर्थ में कोई भी राशि दक्षिणा के रूप में देने को प्रस्तुत हूँ।" बाबा ने कहा, "चिंता मत करो; मुझे कोई बड़ी राशि नहीं चाहिये। मुझे केवल पाँच रुपये दो। वह पर्याप्त रहेगा। वैसे तुम मुझे उन पाँच रुपयों में से तीन रुपये बारह आने दे चुके हो। तुम्हारा केवल मुझपर एक रुपया चार आने उधार हैं। उतना ही ठीक रहेगा।" रतनजी चकित रह गये। उन्होंने सोचा, "मैं तो इस से पहले कभी शिर्डी आया ही नहीं और न ही कभी

बाबा से पूर्व में मिला। मैंने कब उन्हें तीन रुपये बारह आने दक्षिणा में दिया होगा?"

उन्होंने कोई शंका नहीं जताई और बाबा को वह दे दिया जो उन्होंने माँगा था। पर उनका मन अभी भी उसी सोच से ग्रस्त था। वे बाबा के ईंगिद को समझने के लिये अपने मस्तिष्क को खूब दौड़ा रहे थे परंतु विफल रहे। दूसरे दिन बाबा ने पूछा, "रतन तुम क्या सोच रहे हो? जिस दिन तुम शिरडी के लिये रवाना हुए उसी दिन मैं तुम्हारे घर आया था। तुमने मुझे थोड़ा नाश्ता करवाया और मेरी अच्छी खतिरदारी की।" रतनजी तब भी बाबा की बात को समझ नहीं पाये। उन्होंने बाबा से अनुमति माँगी और नांदेड़ वापस लौट आये। एक दिन वे अपना बहीखाता का नीरिक्षण कर रहे थे कि उन्हें चाय की गोष्ठी वाले दिन, जब उन्होंने मौला साहेब को सम्मानित किया था, का खर्चा देखा। वह राशी हू बहू उस रशी से मेल खाती थी जिसे बाबा ने बताई थी। रतनजी उन्मत्त हो उल्हासित हो उठे। बाद में उस दया के पर्वत की कृपा से, उन्हें संतान प्राप्त हुए। जब किसी को बाबा जैसे कल्प वृक्ष मिल जाये तो उसे क्या कमी महसूस हो सकती है?

श्रोताओ! बाबा ने इस घटना से एक सीख दी है। उन्होंने यह सिखाया है कि चाहे जहाँ कहीं भी उनके भक्त हों वे उनका संरक्षण करेंगे और उन्हें वह देंगे जो उनके लिये मंगलमय हो। उन्होंने यह भी सिखाया है कि सतसंग में किये हुए और साधु-संतों की सेवा पर किये हुए खर्चे, उनतक पहुँच जाते हैं। जब हम संतों और महात्माओं की अर्चना करते हैं तब वह ऐसी होती हैं जैसे हम साँई बाबा की ही पूजा कर रहे हों। वह अर्चना भी उनतक पहुँच जाती हैं।

यद्यपि वे विभिन्न जाति या पंथों से थे, रतनजी के मित्र, बिना किसी द्वेष अथवा घृणा की भावना के, एक साथ बैठे थे। बाबा को यह पसंद था। मौला साहेब को जो आतिथ्य उपचार उत्सर्ग किया गया वह भी बाबा ने ग्रहण किया। तो मेरे प्रिय श्रोताओ अपने नेत्र शीघ्र खोलो! जातियों और सम्प्रदायों में भेद प्रभेद करना सहायक नहीं है और हमारी उन्नति के लिये बाधा है।

साँई बाबा की लीलाएँ

पूर्व के महान योगी तथा महात्मा श्री ज्ञानेश्वर, नरसी मेहता, एकनाथ, तुकाराम, सावता माली, कबीर, गोरा कुंभार, बोधले, समर्थ रामदास और अन्य, ईश्वर के बहुत महान भक्त थे। श्री साँई बाबा भी उसी श्रेणी के संत थे। इनमें कोई पृथकता नहीं है। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ जो सभी साधुओं के एकीकरण के स्वरूप हैं - श्री साँई बाबा को।

एक बार मैं उनके सामने बैठा और उनसे दृढ़तापूर्वक आग्रह करता रहा कि वे कुछ चमत्कार दिखायें। तब बाबा ने अपनी अंगूठों से पवित्र गंगा को बहते दिखाया और मुझे परमानंद से विभोर कर दिया।

इस तरह श्री साँई बाबा ने कई लीलाओं को प्रदर्शित किया और अपने शरीर को बैठी हुई अवस्था में, अश्वयुज माह के शुक्ल पक्ष के दशमी, अभिजीत मुहूर्त में छोड़ दिया। इसलाम के तिथि-पत्र के अनुसार वह मुहर्रम के महीने का नौवाँ दिन था। अंग्रेज़ी का १९१८ था और हिंदु पंचांग के अनुसार १८४० था। उस दिन माँ दुर्गा के आसुरीय शक्तियों पर विजय (विजय दशमी) को मनाने गाँव वाले, गाँव की सीमाओं को उत्सव के हर्षोल्लास से पार करते हैं और सीमोल्लंघन का पर्व मनाते हैं। दिव्य बाबा

ने वही दिन इस संसार की सीमाओं को पार करने के लिये चुना। उनके शरीर को ऐसे रखा गया ताकि दोनो मुसलमान और हिंदु भक्तगण वहाँ जायें और उनके दर्शन कर पायें।

श्री साँई बाबा की महासमाधी के तुरंत पश्चात मैंने एक दिव्य स्वप्न देखा। मैं इस स्वप्न का वृत्तांत आपको बताता हूँ। उस स्वप्न में श्री साँई बाबा जो और कोई नहीं बल्कि स्वयं श्री राम थे इस संसार की सीमाओं को पार कर वैकुंठ पहुँच गये, जो कि श्री हरि का निवास है। वहाँ सर्वशक्तिमान श्री महाविष्णु सीमोल्लंघन के बहाने तो आये, पर वस्तुत: वे श्री साँई बाबा को अन्य महात्माओं के साथ स्वागत करने आये जैसे सनक, सानंद, प्रह्लाद, ध्रुव, विभीषण, नारद, तुम्बर, मारुति, शबरी, सुग्रीव, सीरियाला, नंदगोप, यशोदा, भीम, अर्जुन, धर्म राजा, श्री शंकरा, माधवाचार्य, रामानुज, मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, गहनीनाथ, सोपनदेव, चांगदेव, नामदेव, गोरा कुम्भर, दामाजी पंत, तुलसीदास, रविदास, एकनाथ, सावता माली, बोधले बुआ, श्री सामर्थ रामदास, तुकाराम महाराज, सदना कसाई, चोखा महार, नरसी मेहता, नागर और कमलदास।

श्री साँई बाबा को देख कमलदास उनकी ओर दौड़े और अपनी छाती से लगा लिया। वे कुछ क्षण तक कुछ बोल नहीं पाये और इस मिलन के आनंद को उपभोग किया। कुछ देर पश्चात वे बोले ,"मेरे पिता, बाबा, आप मुझे यहाँ अकेला छोड़कर इतने लम्बे समय तक कहाँ चले गये थे? मैं आपके एक दर्शन मात्र के लिये उत्कंठा से जल रहा था।" तब अन्य महात्माओं ने उन्हें सांत्वना दिया, "अब क्यों रो रहे हो? तुम्हारे पिता कबीर तो लौट आये हैं। इस संसार के लोगों को उचित पथ दर्शाने वे इतने दिन शिर�ी में थे। अब वे हमारे साथ ही रहेंगे।" सब ऋषियों ने बाबा की जयजयकार की। दिव्य आत्माओं ने उनके सम्मान में गीत गाये। तब श्री

साँई बाबा ने श्रीमननारायण के निकट आसन ग्रहण किया। उनके चरणकमलों को मैंने अपने हृदय से लगाकर साष्टांग प्रणाम किया और तब मेरी निद्रा भंग हुई। यह था मेरा स्वप्न।

श्री साँई बाबा के पार्थिव शरीर को काका साहेब दीक्षित के नेतृत्व में एक शोभायात्रा द्वारा बूटी वाड़े में ले जाया गया एवम वहाँ उनकी महासमाधी की स्थापना की गई। गोपाल मुकुंद बूटी एक ऐसे धनी थे जिनको दुर्लभ भाग्य प्राप्त था। उन्हें श्री साँई बाबा के चरणों के प्रति तीव्र भक्ति थी। अब बाबा उन्हीं के बनवाए हुए भवन में समाधी में हैं। कई भक्तगणों ने यह अनुभव किया है कि बाबा अभी भी वहाँ विराजमान हैं। किसी को यह नहीं लगता है कि उनकी मृत्यु हो गयी है। यदि किसी को ऐसा लगता है तो वह अज्ञानता है। यह कहा जाता है कि उनका जन्म किसी मनुष्य के कोख से नहीं हुआ था। जिसने जन्म ही नहीं लिया उसके लिये मृत्यु कैसी? वे जन्म और मृत्यु से परे हैं। वे अनंत हैं। वे अविभाज्य हैं। वे ज्ञान के सागर हैं।

प्रिय श्रोताओ! श्री साँई बाबा के भक्तों में नारायण गोविंद चाँदोरकर सर्वश्रेष्ठ थे। जैसे सामर्थ रामदास के लिये कल्याण स्वामी थे वैसे ही श्री साँई बाबा के लिये चाँदोरकर थे। हरि पंत, काका दीक्षित, बूटी, महाजन, हरदा साधू भैय्या, गोविंदराओ दाभोलकर, बाबा तरखड़, मोरेश्वर प्रधान, बालासाहेब भाटे, पुरुषोत्तम अवसते, बाबा एम. बी. रेगे, रघुनाथ तेंदुलकर, उनकी पत्नी सावित्री बाई, मालेगाओं फ़कीर, पुरंधरे, नाना साहेब निमोनकर, तात्या पाटिल, माधवराओ देशपां�, रामचंद्र पाटिल और कितने ही अन्य उनके भक्त थे। मैंने कुछ नाम पूर्व में उल्लेख किया है। क्या यह संभव है कि मैं सभी के नाम लिखूँ?

हे सर्वसक्षम साँई! मैं आपके आगे घुटने टेकता हूँ और आपके संरक्षण की याचना करता हूँ और आपसे एक विनती करता हूँ। कृपया मुझे आपकी दया प्राप्ति के योग्य बनाईये। मैं महात्माओं के चरणों के धूल जैसा हूँ। यह केवल आप ही हैं जो मुझे बचा सकते हैं। मुझे यह ज्ञात है कि आप ही वह नैय्या हैं जो मुझे भवसागर पार कराने में सहायता करेगी। हे साँई महाराज! इस दास गणु को अपने चरण कमलों की छाया से गिरा मत देना। यह मेरी सत्यनिष्ठ प्रार्थना है। मेरे गुरु वामन शास्त्री का स्वर्गवास हो चुका है। इसलिये अब मैं अनाथ हूँ। मैं अभी भी अपनी देख भाल करने के लिये बहुत छोटा हूँ जिस हेतु आपको मेरी देख भाल और पोषण करना पड़ेगा। बाबा! आप सब साधुओं के वेश में उपस्थित हैं। आप ही वामन शास्त्री हैं। आप ही मेरे पिता हैं।

दिव्य अमृत के असीम सागर जैसे श्री साँई बाबा का दिव्य इतिहास है। इस इतिहास को सभी पढ़ने वालों और सुनने वालों को समस्त कल्याण पहुँचे। यह उस दास गणु की प्रार्थना है जो श्री साँई बाबा के गाथा गायन द्वारा तथा उन गाथाओं को श्रवण करने द्वारा उनकी सेवा कर रहा है। सभी का कल्याण हो।

उन श्री साँई बाबा की जयजयकार हो, जो स्वयं ब्रह्म हैं।

यह दास गणु महारज द्वारा लिखित 'भक्त सारामृत' के ५३वें अध्याय का अंत है।

(योगदान का स्रोत: मूल संकलन संत कवि श्री दास गणु महाराज रचित "श्री साँई गुरुचरित्र"। श्री एस वी एल द्वारा तेलेगु संकलन से अनुवादित जिस में श्री साँईनाथुनी सरथबाबू जी द्वारा दी गई परिचयात्मक प्रस्तावना दी गई है)

दास गणु अहङ्कार का त्याग करते हैं

यह हमारा स्वभाव है कि हम उत्सुकतापूर्वक साँई भक्ति के प्रति हमारे दृष्टिकोण दूसरों के साथ बाँटते हैं और अपेक्षा करते हैं कि वे भी ऐसा करें। जिन्होंने साँई की लीलाओं को देखा है, यह चाहते हैं कि जो कृपा उन्हें प्राप्त हुआ है, वह दूसरों को भी प्रदान की जाए। अत: हर साँई भक्त वह साँई दास है जो साँई के प्रेम और संदेश को फैलाने में युक्त रहता है। जहाँ कुछ लोग स्वेच्छा से साँई के कार्यों से जुड़ जाते हैं, वहाँ दूसरे अप्रत्यक्ष रूप से अपने साँई अनुभवों को बाँट कर उसी लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। यह तो स्वाभाविक है कि इन भले कार्यों का फल उनकी सक्षमता तथा उनकी इन कार्यों में कितनी भागीदारी रही है, उस पर निर्भर करता है। परंतु ईश्वर तो सच्चा प्रेम और भक्ति चाहते हैं न कि उनकी चेष्टाओं की विशालता को! महान महाकाव्य रामायण में रेत पर गिलहरी की चेष्टायें उतनी ही महत्वपूर्ण थीं जितनी कि महाबली हनुमान की। श्रीमंत राम ने उस गिलहरी के उठाए हुए और सेतु निर्माण कार्य में हर रेत के कण का अनुदान करने को उतना ही मत्वपूर्ण समझा जितना कि वानरदेव ने विशाल शिलाओं को हटाकर किया।

कभी कभी भगवान के शब्दों को फैलाने में और उस कार्य में अंतरभावन का अत्यंत सहभागी होना इस विश्वास की ओर ले जाता है कि उनकी की हुई साँई सेवा दूसरों की की गई सेवा से अधिक श्रेष्ठ है। इस भावना से साँई संतानों में ईर्ष्या और द्‌वेष की उत्पत्ती होती है जिससे उनका आध्यात्मिक पतन हो जाता है। केवल साँईश्री, वह दयावान सद्‌गुरु ही उनको उस संभावना से उद्‌धार कर सकते हैं।

एक बार दास गणु महाराज को इसी तरह की परिस्थिति का सामना करना पड़ा। यद्यपि दास गणु वह व्यक्ति थे जिनकी साँई सुसंदेश की रचना से हज़ारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध हो प्रोत्साहन मिला, तद्यपि वे शिर□ी ग्राम की एक महिला भक्तिनी के प्रति प्रतिकूल रहते थे। वे दूसरों के समक्ष उनकी समालोचना करते थे और कई बार ऐसा उग्र भाव से भी किया करते थे। एक बार जब दास गणु ऐसे निंदनीय व्यवहार में लिप्त हो चुके थे, तब साँईनाथ महाराज ने दास गणु को बुलवाया और उनके बर्ताव के लिये उन्हें □ांट लगाई। बाबा ने यह कह कर दास गणु को □ांटा कि जो भगवान के कार्यों से युक्त होते हैं उन्हें हेकड़ी नहीं दिखानी चाहिये और दास गणु को उस भक्तिनी, जो उनके तिरस्कार का विषय बन चुकी थीं, के पाँव पड़कर उनसे क्षमा मांगनी चाहिये। दास गणु के लिये, जो जाने माने कीर्तनकार थे और जिनके अनुगामियों के लिये वे सम्मानीय थे, यह आसान कार्य नहीं था कि झुककर उस महिला के पैर पड़ें। परंतु उस महान स्वामी की बात तो माननी ही थी और इस प्रक्रिया में वे ईश्वर के विनयशील सेवक में परिणत हो गये न कि एक उद्दं□ प्रचारक रहे, जो कि अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ मानता हो!

ॐ साँईनाथार्पणमस्तु, शुभम □भवतु॥

साँई कृपा ही केवलम्

जय श्री साँईनाथ!